न्यू अल्फ्रेड थियेट्रीकल कम्पनी आफ़ बम्बई

का

सर्वश्रेष्ठ नाटक

श्रीकृष्ण-चरित्र

का

पहला भाग

श्रीकृष्ण-अवतार

लेखक और प्रकाशक—

पं० राधेश्याम कथावाचक

अध्यक्ष—

द्वितीय बार २०००] सन १९३९ [मूल्य १)

PRINTED BY RAM NARAYAN PATHAK, AT THE SHRI RADHEY SHYAM PRESS, BAREILLY.

पात्र-परिचय।

पुरुष-पात्र

भगवान् श्रीकृष्ण—महाप्रभु।

बलराम—रोहिणी-नन्दन।

नारद—देवर्षि।

ब्रह्मा—प्रसिद्ध देवता।

वि ष्णु—प्रसिद्ध देवता।

उग्रसेन—मथुरा के बूढ़े राजा।

कंस—मथुरा का अत्याचारी राजा।

वसुदेव—कंस के बहनोई।

नन्द—गोकुल के ज़मींदार।

सामन्त—उग्रसेन का सदाचारी सचिव।

अक्रूर—कंस के सम्बन्धी, हरि-भक्त।

चाणूर—कंस का साथी, एक पहलवान।

मुष्टिक—कंस का साथी, एक पहलवान।

मनसुखा—भगवान् श्रीकृष्ण का सखा।

श्रीदामा—भगवान् श्रीकृष्ण का सखा।

इन्द्र—स्वर्ग का राजा।

इनके अतिरिक्त, सूत्रधार, प्रजाजन, दर्बारी ग्वाल बाल आदि।

—०—

स्त्री-पात्र

भगवती राधा—महाशक्ति।

देवकी—कंस की बहन।

यशोदा—नन्द की स्त्री।

महामाया—भगवान् की माया।

ललिता—राधा की सखी।

विशाखा—राधा की सखी।

—०—

स्थान—

क्षीर-सागर।

मथुरा, वृन्दावन और गोकुल।

—०—

॥ श्रीः ॥

भूमिका ।

ऋषियों की पवित्र भूमि भारतवर्ष ही अन्यान्य विद्याओं और कलाओं के समान नाट्यकला का भी उद्‌गमस्थान है-इस सत्य सिद्धान्त में अब प्रायः संदेह का अवसर नहीं रहा। महाकवि भास के नाटकों के प्रकाशित होजाने से-उनकी प्राचीनतम शैली, अत्यन्त प्राचीन भाषा और भावगाम्भीर्य आदि से सब को मान लेना पड़ा कि इतने प्राचीन नाटक अन्य किसी देश वा अन्य भाषा में नहीं हैं। वस्तुतः जगद्‌गुरु भारत ने ही इस हृदय-ग्राहिणी अद्भुत, सुकुमार और मनोहर कला का आविष्कार कर, ईश्वर के मानव-हृदय-निर्माण-शिल्प को सफलता तक पहुँचाया था। भारत में यह कला कितनी प्रतिष्ठित और उपादेय समझी जाती थी-इसके ज्ञान के लिये इतना ही निदर्शन पर्याप्त है कि पुराणों में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द के पुत्र प्रद्युम्न, साम्ब आदि के स्वयं नाटक खेलने का वर्णन मिलता है, और भरत मुनि जैसे मोक्षमार्ग के पथिक इस विद्या के आचार्य बनने में अपने को गौरवान्वित समझते थे। कविसमाज में नाटक बना लेना कविता की एक कसौटी समझी जाती थी। 'नाटकान्तं कवित्वम्' यह संस्कृत भाषा में प्रसिद्ध आभाणक (कहावत) है। उत्तम नाटक प्रणेता कवियों को जो यश संस्कृत साहित्य में

मिला, वह अन्य विद्वानों के भाग्य में नहीं बदा था—इसमें कोई संदेह नहीं। संस्कृत वाङ्मय में नाटक अपना एक खास स्थान रखते हैं।

संस्कृत में नाटकों का इतना उच्च स्थान रहने पर भी हिन्दी भाषा का भण्डार दुर्भाग्यवश बहुत काल तक नाटक जैसी उपयोगी वस्तु से शून्यप्राय ही रहा। इसका कारण था कि हिन्दी भाषा का साहित्य जिस समय विकसित हो रहा था, उस समय परतन्त्रता की शृङ्खला में जकड़ी हुई हिन्दू जाति से हृदयोल्लास, उच्च प्रतिभा, उच्च भाव—आदि उत्कृष्ट गुण प्रायः विदा लेचुके थे। उस समय हिन्दू जाति अपनी सभ्यता से बहुत कुछ गिर चुकी थी, इसका अपना शिक्षामार्ग दूषितप्राय हो चुका था, और दूसरी सभ्यता व दूसरी शिक्षा का कोई प्रभाव इस पर पड़ा न था। कोई ऐसी उच्च सभ्यता सामने थी ही नहीं जो इस पर प्रभाव डालती, या इसे अपनाने को विवश करती। इसी-लिये उस समय हिन्दू जाति के हृदय की स्थिति डावांडोल सी हो पड़ी, और सभ्यता-विकास की प्रधान साधन अन्यान्य बहुत सी विद्याओं और कलाओं की तरह यह अत्युच्च नाट्यकला भी इसके हाथ से निकल गई। बस मैदान खाली देखकर हिन्दू सभ्यता से बहिर्भूत, कुरुचिपूर्ण, विदेशीय नाटकों और उनके अनुकूल नाट्यकला ने यहां अपना अड्डा जमा लिया। इस दशा में सुशिक्षित सभ्य पुरुषों का इस कला से मुख मोड़ लेना स्वाभाविक ही था। परिणाम यही हुआ कि नाटक खेलना या बनाना तो जहाँ तहाँ, उनका देखना तक भी सभ्यता से पतित होने का लक्षण समझा जाने लगा, और केवल पेशेवर लोगों के हाथ में जाकर यह कला एक निकृष्ट श्रेणी में चली गई।

कहावत है कि 'सब दिन एक से नहीं रहते'। प्रभावशालिनी यूरोप की सभ्यता से परिचय प्राप्त कर भारत ने फिर करवट बदली। नई सभ्यता की रोशनी में अपनी सभ्यता की भी खोज होने लगी। उधर 'शकुन्तला' आदि नाटकों के कारण ही गुण-ग्राही यूरोप के प्रकाण्ड विद्वानों ने जब संस्कृत भाषा साहित्य पर उच्च श्रद्धा प्रकट की, तो अपनी नाटक प्रणाली की ओर क्रमशः भारतीयों का ध्यान आकृष्ट हुआ। वङ्ग, महाराष्ट्र, गुर्जर आदि प्रान्त पुनः इस कला में अग्रसर होने लगे। हिन्दी भाषा को भी कई एक माई के लालों ने अपनी माता संस्कृत भाषा की उस उच्च संपत्ति की उत्तराधिकारिणी बनाया—जिन में कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के नाम ने विशेष रूप से अमर पद प्राप्त किया यों हिन्दी भाषा को कुछ नाटक मिले, किन्तु वे संस्कृत के अनुवाद रूप ही थे, और समय परिवर्तन के कारण समाज की रुचि जो परिवर्तित होती हुई बहुत दूर जा चुकी थी, उसके अनुरूप न थे। इससे हिन्दी साहित्य में नाटकों का स्थान हो जाने पर भी, स्टेज पर आने का हिन्दी नाटकों को सौभाग्य प्राप्त न हुआ, स्टेज पर उन्हीं कुरुचिपूर्ण नाटकों की भरमार रही। आज जिन भारतमाता के सुपुत्रों की प्रतिभा की प्रभा ने उस अभाव—अन्धकार को मिटाकर नाटकों के स्टेज के उदयाचल पर हिन्दी भाषा के प्रतापभानु को सिंहासनासीन किया है, और उस स्टेज को भी पवित्र करने का आचन्द्रतारक सुयश प्राप्त किया है, उन में हमारे कविरत्न प० राधेश्याम जी भी एक मुख्य स्थान रखते हैं। आपकी लेखनी ने एक से एक बढ़कर कई नाटक हिन्दी साहित्य और हिन्दू संसार को दिये हैं; और

सभ्य, सुशिक्षित एवं धार्मिक जनता को नाटकों के आनन्द का पूर्ण भागी बनाने में बहुत बड़ा भाग लिया है। आज भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों के सब प्रधान नगरों में आपके नाटकों की धूम है, और उनके कारण हिन्दी भाषा एवं सनातन धर्म का आशातीत प्रचार हो रहा है। अस्तु, उनका ही 'श्रीकृष्णावतार' नाम का भक्ति-रस-प्रधान नाटक—जो कि कई वर्षों से स्टेज पर आकर भावुक जनता को आनन्द-सागर में निमग्न कर चुका है, आज प्रेस से भी निकल कर साहित्य रसिकों के समक्ष उपस्थित हो रहा है।

यों तो सब ही शास्त्र वा ग्रन्थ उपदेश के लिये ही हैं, अपनी भिन्न भिन्न प्रणाली द्वारा सब ही मनुष्य को कर्तव्य मार्ग का बोध कराते हैं, जो कुछ भी कर्तव्य नहीं सिखाता उसे शास्त्र ही नहीं कहा जासकता, किन्तु संस्कृत साहित्य के प्राचीन कर्णधारों ने उपदेश देनेवाले शास्त्रों में 'नाटक' का स्थान सब से ऊपर माना है। मम्मटाचार्य्यादि आलंकारिक धुरंधरों ने उपदेश के तीन दर्जे बताये हैं। एक 'प्रभुसंमित उपदेश' जो आज्ञा वा हुकुम कहा जाता है। यह माता, पिता, गुरु-आदि से पुत्र वा शिष्य को, एवं स्वामी से भृत्य को मिलता है। इस में किसी युक्ति की आवश्यकता नहीं, कुछ ऊँच नीच समझाना नहीं पड़ता, कोई प्रलोभन नहीं देना पड़ता, बस सेनानायक ने कह दिया कि हमला करो, सेना टूट पड़ी। किसकी मजाल जो कुछ सवाल कर सके। शास्त्रों में इस दरजे का उपदेश वेद, धर्मसूत्र आदि का है। आज्ञा होगयी कि 'अहरहः सन्ध्यामुपासीत', 'प्रतिदिन सन्ध्योपासन करो', अब क्यों

करें—का सवाल नहीं उठ सकता । हुकुम सुनते ही काम करना होगा । दूसरा दर्जा है—'सुहृत्संमित उपदेश' । इसे शिक्षा या नसीहत कहते हैं । यह मित्र की ओर से मित्र को मिलता है । मित्र आज्ञा नहीं देता, कार्य का परिणाम—नतीजा—सामने रखदेता है । 'भाई ऐसा करने से ऐसा होगा', युक्तिपूर्वक समझाकर मन में बात को बैठा देना मित्र का काम है । शास्त्रों में पुराण, इतिहास इस दरजे का उपदेश देते हैं । वे प्रत्यक्ष आज्ञा नहीं देते । युक्ति से समझा देते हैं कि रावण उपद्रवी, दुराचारी, था तो उसका यह परिणाम हुआ, और राम धार्मिक, उदार, थे—तो उनका यों यश हुआ । बस, अधिकारी लोग समझ लेते हैं कि हमें राम की तरह चलना चाहिये, रावण की तरह नहीं । जो उद्दण्ड प्रकृति के उच्छृङ्खल लोग आज्ञा के वश में नहीं आते, आज्ञा मानने में उलटा अपना अपमान और आज्ञा तोड़ने में अपनी शान समझते हैं वे भी युक्ति से वश में हो जाते हैं । नतीजा दिखाकर नसीहत देने से मान जाते हैं । इसलिये प्रथम श्रेणी के उपदेश की अपेक्षा यह दूसरी श्रेणी का उपदेश व्यापक है, इससे अधिक काम निकलता है । किन्तु ऐसे भी लोग हैं जो नसीहत भी सुनना नहीं चाहते । न आज्ञा ही उनका उपकार कर सकती है न शिक्षा ही । उनको समझाने का क्या कोई मार्ग ही नहीं है ? है, अवश्य है । उसे 'कान्तासंमित उपदेश' कहा जाता है । जो न बड़ों की सुनें न मित्रों की, जो अपनी तेज़-मिज़ाजी के कारण प्रसिद्ध हैं, वे भी अपनी प्रियाओं के वश में आते देखे जाते हैं, उनकी आज्ञाओं को शिर आंखों पर उठाते नज़र आते हैं । क्या कारण है ? वहाँ रस है, मधुरता

है, उस में चित्त को बलात् खींच लेने की शक्ति है। प्रिया जो कुछ चाहे, अत्यन्त उद्दण्ड प्रकृति के पुरुष से भी सरलता पूर्वक वह काम करवा सकती है। यदि चतुर हो तो उसे रास्ते पर भी ला सकती है। यही शास्त्र वहां काम देता है। शास्त्रों में यह दर्जा काव्यों और नाटकों का है। जो वेद शास्त्रों के कोड़े अपनी सुकुमार बुद्धि पर कभी नहीं सह सकते, पुराण इतिहासों की शिक्षाओं के शुष्क जङ्गलों में भी जो नहीं भटक सकते, वे भी रस के कारण, मधुरता से खिंचे हुए, काव्य नाटकों की ओर झुकते हैं। बस, काव्य नाटक यदि उपदेशपूर्ण हों, उनमें कर्त्तव्य मार्ग की शिक्षा छिपी हुई हो, तो वह उसी तरह उन्हें ठीक कर देती है—जैसे बताशे में छिपाकर बालकों को खिलाई हुई कुनैन उनका ज्वर मिटा देती है। श्रव्य काव्यों की अपेक्षा भी दृश्य नाटकों में प्रधान रूप से रस का स्थान माना गया है, इस से नाटकों की शिक्षा का प्रभाव बहुत शीघ्र होता है। सारांश यह कि प्रतिभाशाली चतुर कवि जिस बात का प्रचार करना चाहे, उसका नाटकों द्वारा अनायास कर सकता है। यही नाटकों का महत्त्व है।

नाटक का यह उद्देश्य प्रस्तुत नाटक (श्रीकृष्णावतार) के द्वारा प्रति दिन सिद्ध होता देखा जाता है। इसका अनुभव उन्हें ही हो सकता है, जिन्होंने बड़े शहरों में 'कृष्णावतार' का अभिनय होता हुआ देखा है। इस भूमिका के लेखक ने इस बात का खूब अनुभव किया है। कोट, पैंट, हैट, बूट—धारी बीसवीं सदी के 'अपटूडेट' 'जेंटिलमेन' जो कभी स्वप्न में भी 'कृष्णचरित्र', सुनना पसन्द न करते, ईश्वर पर विश्वास करने की बात भी जिनके

ललाट में 'त्रिवली' पैदा कर सकती है, 'अवतारवाद' की तो गन्ध आते ही जिनकी नाक भौंह बेतरह चढ़ जाती है, भूलकर भी 'भक्ति' को होठों तक आने देना जो पसन्द नहीं करते, वे भी इस नाटक के सौन्दर्य के कारण अपनी प्रेमपात्र अर्द्धाङ्गिनियों का बग़ल में हाथ डाले दर्शक स्थान में आकर बैठते हैं, और 'जगदीश हरे, जगदीश हरे' की धुन पर बलात् शिर हिलाते देखे जाते हैं। यही क्यों, जब कवि का 'प्रस्तावना' का यह कथनः—

तख़्ता तख़्ता भी बोल उठे व्रजवल्लभ नटनागर की जय।
पर्दे पर्दे से भी निकले मनमोहन मुरलीधर की जय॥
रङ्गस्थल में ऐसी गूंजे, गिरिवरधारी व्रजराज की जय।
दर्शकमण्डली पुकार उठे श्रीकृष्णचन्द्र महाराज की जय॥

(पृ० ४)

अक्षरशः सत्य होता है, भक्तिरस में सराबोर जनसमुदाय जब गद्गद् होकर आनन्दध्वनि करता है, तब उन महाशयों के मुख मे भी 'कृष्ण' का नाम बलात् निकल ही पड़ता है। ऐसा भक्तिरस का स्रोत क्या दूसरे उपाय से इस ज़माने में बह सकता था? सैकड़ों धर्मोपदेशक जो काम नहीं कर सकते थे, वह कविरत्न जी ने इस नाटक के द्वारा प्रत्यक्ष कर दिखाया—इस में कोई सन्देह नहीं। इस सफलता के लिए कविरत्न जी को जितनी बधाइयाँ दी जांय, वे कम ही होंगी। सनातनधर्मावलम्बी संसार के आप अनन्त धन्यवादों के पात्र हैं।

संस्कृत साहित्य में नाटकों के लिए जैसे नियम बनाये गये हैं, उन सब से यह नाटक पूर्ण रूप से नियमित है—यह तो नहीं कहा जा सकता। साहित्यिक-दृष्टि से कोई दोष इसमें नहीं यह

कहना भी बहुत बड़ा साहस है। साहित्य-दृष्टि से सर्वथा निर्दोष नाटक तो संस्कृत में भी इने गिने ही प्राप्त होंगे। और सत्य तो यह है कि वैसे नियमों से आजकल नाटक लिखा जाय-तो वह वर्तमान में स्टेज पर सफलता प्राप्त कर सके इसमें सन्देह है। समयानुसार जनता की रुचि में परिवर्तन दुर्निवार है, उसके साथ ही साहित्य के नियमों का परिवर्तन भी अवश्यंभावी है। तथापि यह कहने में हमें कोई संकोच नहीं कि प्राचीन काल का नाटकों का उद्देश्य इस में सुरक्षित है. प्रधान-लक्ष्य से च्युति नहीं है, औचित्य का अच्छा निर्वाह है, पात्रों की प्रकृति पर पूर्ण ध्यान रक्खा गया है, स्वाभाविकता को निबाहा है और रसों का समावेश उत्तम कोटि का है

पूर्व कहा जा चुका है कि कवि ने इसमें भक्ति रस को प्रधानता दी है। भक्तिरस अलंकार शास्त्रोक्त रसों में है या उन से पृथक्, वह रस है या भाव इत्यादि अलङ्कारशास्त्र के झमेले में पाठकों को डालना हम नहीं चाहते। यहां इतना ही कहना पर्याप्त है कि चित्त की द्रुति ही यदि रस का मुख्य प्रयोजन है, वा उसी का नाम यदि रस है, तो 'भक्ति रस' अवश्य रस है, क्योंकि चित्त की द्रुति ऐसी और जगह होना असम्भव है।—

'कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना।
कथं विनाश्रुकलया शुद्ध्येद् भक्त्या विनाशयः॥

भक्तिरस इस नाटक में सब जगह ओतप्रोत है। विशेष कर 'नारद' भक्ति के प्रधान अभिनेता हैं और उनकी उक्तियों में भक्तिरस सर्वत्र आस्वाद्य है।

'भक्तिरसायन' ग्रन्थ में श्री मधुसूदन सरस्वती ने दो प्रकार की भक्ति का निरूपण किया है,-अन्यरस संवलित* और शुद्ध। प्रस्तुत नाटक में प्रथम प्रकार की भक्ति है। अर्थात् जैसा कि नाटक में होना चाहिये। इस में प्रायः सब ही रस और अनेक भाव स्थान स्थान पर परिपुष्ट हुए हैं, किन्तु सब की तान भक्ति पर ही आकर टूटती है। इससे अन्य-रस-रुचिर-भक्ति-रस इस में अपना पूर्ण चमत्कार दिखा रहा है। अन्य रसों का संनिवेश भी सुन्दर है; जैसा कि पृ०९४ में श्री राधिका और पृ० १४४ में गोपियों का शृंगाररस पूर्ण परिपुष्ट है, पृ०९६ में मनसुखा के चोरी का समर्थन करने में और पृ० १७२ में उसी के कंस को मारने के लिये अपनी डींग मारने में हास्य रस का अच्छा चमत्कार है। मनसुखा इस नाटक में विदूषक के स्थान पर रक्खा गया है, उसकी उक्तियों में प्रायः सर्वत्र ही हास्यरस की अच्छी चाशनी है। करुणा तो इस नाटक में कई जगह खूब प्रस्फुटित हुई है। इस रस का प्रधान आधार देवकी है, पृ० १६, पृ० ३४-३८ आदि में करुणा का निर्झर दर्शकों को खूब आप्लुत करता है, पृ० ११८-१२२ में भगवान् श्रीकृष्ण के कालीदह में जाने के समय तो 'करुण-रस' का सागर उद्वेल होगया है। वहाँ तो भवभूति की यही उक्ति याद आती है 'अपिग्रावारोदित्यपिदलति वज्रस्य हृदयम्"। पृ० १७ पृ० १८५-१८७ आदि में श्रीकृष्ण, श्रीबलराम आदि की वीरोक्तियाँ हृदय को खूब फड़काती हैं, वीर

---

* नवरसरुचिरं वा केवलं वा पुमर्थं।
परममिह मुकुन्दे भक्तियोगं वदन्ति॥

(भक्तिरसायन का आरम्भ]

रस को मानो आंख के सामने सजाती हैं । पृ० १२५ में इन्द्रदेव का व-१३६ में कंस का कोप भी रौद्ररस को खूब चमकाता है। आरम्भ में पृ० १४ में भी रौद्र रस की पूर्ण सामग्री है, किन्तु उसका आलम्बन एक अबला, तत्रापि अपनी बहन होने के कारण वह रौद्र रसाभास है। हां, उनही पृष्ठों में देवकी का भय अवश्य भयानक रस के रूप में परिणत होरहा है। पृ० ११२ के नारद के गान में और पृ० ११३ के दृश्य में अद्भुत रस भी अपना अच्छा चमत्कार दिखा रहा है। ये सब उदाहरण मात्र हैं। अन्यान्य स्थानों में भी रसों का परिपोष रसिकों को खूब आनन्द स्रोत में बहाता है। भावों का भी स्थान स्थान पर अच्छा संनिवेश है, उदाहरण के लिये २१-२२ में वज्राङ्ग की धृति, मति, १५७ में वसुदेव की धृति, पृ० २३ में उग्रसेन का विषाद, ७७-७८ में व ८१-८२ में कंस का गर्व, १५५ में यशोदा का वात्सल्य, १५७-१५९ में देवकी की चिन्ता और विषाद, १६६ में देवकी का हर्ष, १८९ में कंस का विबोध आदि आदि। इस नाटक में स्वाभाविकता का निर्वाह करना, अप्राकृतिकता न आने देना, कवि के सामने एक बहुत बड़ी समस्या थी। क्योंकि जिस चरित्र को कवि ने लिया है, उसमें पद पद पर अप्राकृतिकता है। लोकदृष्टि से भगवान् कृष्ण के चरित्र में स्वाभाविकता दिखाना बड़ा कठिन काम है। स्वयं भगवान् कृष्ण ही कहते हैं—'जन्म कर्म च मे दिव्यम्'। फिर दिव्य को मानुष दृष्टि की कसौटी पर कैसे कसा जाय। इसीलिये कृष्णचरित पर कुछ लिखनेवाले या तो आधुनिक नवशिक्षित लोक का रञ्जन नहीं कर सकते, या वे लोकरञ्जन के फेर में पड़ें तो परम्परा सिद्ध

कृष्णचरित को बिगाड़ बैठते हैं। फिर कृष्णचरित पर, तिस में भी उनकी बाललीलाओं पर, नाटक लिखना तो और भी टेढ़ी खीर है। आजकल की जनता नाटक में जैसी स्वाभाविकता और चरित्र का आदर्श देखना चाहती है, उसका निर्वाह भगवान् कृष्ण के बाल-चरित की घटनाओं में कैसे किया जा सके? वस्तुतः कवि के आगे यह एक उलझन थी, किन्तु कविरत्न जी ने कई जगह इस उलझन को जिस तरह सुलझाया है-उसे देख कर उनकी प्रतिभा को भूरि भूरि प्रशंसा मुख से निकल पड़ती है। कृष्णचरित का पुराणसिद्ध क्रमभी आपने नहीं बिगाड़ा, और अस्वाभाविकता को भी यथाशक्ति बचाया-यह नाटक में कमाल है। सब से पहले जन्म की घटना ही लीजिये। श्रीभागवत में लिखा है—भगवान् कृष्ण ने (गर्भवास के समय) सामान्य जीवों की तरह वसुदेव के शरीर धातुओं में व देवकी माता के उदर में निवास नहीं किया, किन्तु वे उनके मन में निवास करते रहे ॐ। समय पर वे अपने अलौकिक-चतुर्भुज, दिव्याभरणभूषित, दिव्यशस्त्रसज्जित रूप से प्रकट होते हैं, और फिर वसुदेव देवकी की प्रार्थना पर प्राकृत शिशु बन जाते हैं आदि। इस अलौकिक घटना को कवि ने (पृ० ५९-६६ में) प्रथमाङ्क के अष्टम दृश्य में कैसी उत्तमता से स्वाभाविक रूप दिया है! देवकी कारागार में गा रही है—'निर्बल के प्राण पुकार रहे जगदीश हरे जगदीश हरे' आदि (बहुत उत्तम मार्मिक

ॐ आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः। (श्रीभाग० १० स्क० २ अ० १६) ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी। दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा यथानन्दकरं मनस्तः। (श्लो० १८)

गाता है।) 'अर्थात् देवकी का मन एकान्ततः भगवान् में लगा हुआ है' [मन से गर्भधारण का स्वाभाविक अर्थ यही हो सकता है] इसी अवसर में वसुदेव बाहर चले जाते हैं, देवकी शय्या पर लेटती है, दोनों को अर्द्ध-स्वप्न-विबोध की सी हालत में भगवान् की दिव्य चतुर्भुज मूर्ति के दर्शन होते हैं, और साथ ही देवकी पास बालक को सोया हुआ देखकर वसुदेव को बुला लेती है। वसुदेव अपनी अर्धमुग्ध दशा में देखी हुई मूर्ति का वर्णन करते हैं—

नील कमल सा सुघर सलोना श्याम बदन था।
कृष्ण रैन* में चन्द्र सरीखा प्रिय दर्शन था॥
तन पर मणि से जटित सुसज्जित स्वच्छ वसन था।
तारागण से लसित प्रफुल्लित मनो गगन था॥
मोरमुकुट था शीस पर गल बैजन्ती माल थी।
विश्व जीतने के लिये प्रकटी मूर्ति रसाल थी॥

इसी प्रकार देवकी ने जो जो वर्णन किया है वह भी खूब मनोज्ञ है (पृ० ६२)। अन्त में देवकी का यह कथन उस में जान डाल देता है—

कुछ याद नहीं कुछ ध्यान नहीं, कैसे वात्सल्य नवीन हुआ।
उस रूप में मैं ही लीन हुई, या वह ही मुझ में लीन हुआ॥

आगे गोकुल पहुँचाने की भगवान् की आज्ञा को कवि ने आकाशवाणी का रूप दिया है, और अपने आप कपाट खुलने की अवाज नेपथ्य से सुना कर उसे ईश्वरीय संकेत बताया है। जहाँ तक हमारा विचार है जन्म की अलौकिक घटना को इससे अच्छा

* रात्रि। ऐसे व्रजभाषा के शब्द कई जगह बलात् कवि की लेखनी से निकले हैं।

नाटकोपयोगी रूप दिया नहीं जासकता। कवि की प्रतिभाने यहाँ अपना प्रत्यक्ष रूप दिखाया है। योगमाया की कंस के हाथ से छूट कर आकाश में चले जाने की घटना को दृश्य (सीन) की विचित्रता से सजा दिया है। कालीनाग नाथने की अलौकिक लीला को भी खेल, संगठन, उपदेश, भ्रातृकर्त्तव्य, वीरता के आदर्श, करुणारस और दृश्य (सीन) की विचित्रता द्वारा उद्बुद्ध अद्भुत रस के पुटों से विल्कुल स्वाभाविक रूप में झलका दिया है। और इसी प्रकार गोवर्द्धनधारण लीला को भी गोप गोपालों के परस्पर परिहास, कृष्ण के गम्भीर उपदेश, गोमहिमा, दृश्य (सीन) के चमत्कार आदि से अलंकृत कर उसकी अलौकिकता को ऐसा छिपाया है कि दर्शकों को ज़रा भी अस्वाभाविक रूप न खटके। लीला को स्वाभाविकता में अलौकिकता विल्कुल छिप गई है। व्रजबासियों की यह ग्रामीण तर्ज की गीति इस सीन में कितनी मनोहर है-(पृ. १२७)

साँवरिया कमरीतान, व्रज पै कारे बादर घिर आये।
बह जाय न अपनी छान, व्रज पै कारे बादर घिर आये।
प्रलय दिवस की उठी बदरिया, काल निशाकी घिरी अंधरिया।
दिन भयो रैन समान, व्रज पै कारे बादर घिर आये।
कोप उठ्यो देवन को राजा, रह्यो बजाय जुझाऊ बाजा।
ह्वायगो का भगवान्, व्रज पै कारे बादर घिर आये।

कवि की प्रतिभा का यही चमत्कार है कि खटकती हुई बातको सजा कर उससे अच्छा काम लेले। कृष्ण-चरित की अलौकिकता से कविरत्न जी ने यही लाभ उठाया है कि ऐसे स्थानों में नाटक के सीन अलौकिक दृश्यों से सजा लिये हैं, जिनका कि आज कल

के नाटकों में बहुत महत्त्व माना जाता है। पृ० ५६, १२३, १३३ आदि के दृश्य नाटक को ख़ूब सजाते हैं—जिनका कि अनुभव देखने वालों को ही हो सकता है।

यों लीला में केवल स्वाभाविकता लाने का ही यत्न नहीं किया गया है किन्तु कवि ने सनातनधर्म के एक महामहोपदेशक का कर्त्तव्य-पालन पूर्ण रूप से किया है। नाटक के स्टेज से सनातनधर्म के प्लेटफ़ार्म का काम लेने का यत्न किया है। कृष्णचरित पर आज कलके लोग जो शङ्काएं करते हैं, उनका उत्तर स्थान स्थान पर बड़ो खूबी से दिलाया है। पहले 'अवतार वाद' को ही लीजिए। 'ईश्वर अवतार लेता है' इस सिद्धान्त पर जो जो शङ्कायें की जाती हैं, उनका समाधान करते हुए 'अवतार वाद' का रहस्य पृ० १० में स्वयं भगवान् विष्णु के मुख से, पृ० ५६ में योगमाया के मुख से, पृ० १००, ७२, ९३ में नारद के मुख से और पृ० १७६ में अक्रूर की उक्ति द्वारा बड़ी उत्तमता से प्रकट किया गया है। पृ० ९३ का नारद का गान इस सम्बन्ध में बड़ा ही मनोहर और भक्ति रस परिपूर्ण है—

जिनको मुनियों के मनन में नहीं आते देखा।
हमने गोकुल में, उन्हें गाय चराते देखा॥ इत्यादि

इसके आगे का नारद और कृष्ण का सम्वाद भी भक्तिमार्ग के पथिकों के लिए एक खास चीज है, उसको भाषा अत्यन्त मनोहर और फड़कती हुई है। पृ० १७६ का कंस और अक्रूर का संवाद बिलकुल कुतर्की और आस्तिक के संवाद जैसा है। कृष्ण लीलाओं में माखन चोरी का समाधान ९६, ९७ में बड़ी खूबी के साथ किया है, वहाँ प्रौढ युक्ति और साथ ही आजकल

दशा और वर्त्तमान विचारों का पुट लगाते हुए यह सिद्ध किया है कि दूध, माखन बिकने की चीज ही नहीं है, इन पर सबका अधिकार है। अर्थात् भगवान् कृष्ण और उनको आज्ञा से उनके सखाओं का माखन चुराना इस ही उद्देश्य से है कि गो माता को देन इन वस्तुओं में कोई अपना स्वत्व न समझें। बल्कि सब इन्हें खाँय, और हृष्ट रहें। क्या अजीब युक्ति है, हास्य रस का हास्य रस, और सत्य का सत्य। यही तो प्रतिभा का चमत्कार है।

कृष्णचरित में श्रीराधा जी के सम्बन्ध में जो आधुनिक बहुत से लोगों को शङ्काएं होती हैं—उनका भी निराकरण स्थान स्थान पर बहुत खूबी से किया है। पृ० ८६, ८७ में 'राधातत्त्व' समझाया है। भगवान् कृष्ण के साथ राधा का विवाह नहीं हुआ है, फिर भी राधा कृष्ण का प्रेम क्यों? इस पर पृ० ८९ में श्रीराधा जी के मुख से ही बड़ा सुन्दर उत्तर दिलाया है—'पति और पत्नी के नाते का प्रेम ही प्रेम नहीं है, प्रेम के और भी बहुत से रूप हैं'। 'मैं अपने प्राणप्यारे से प्रेम करती हूं—उस तरह का—जिस तरह का प्रेम पूर्णमासी के चन्द्रमा को देख कर समुद्र की लहरें उससे करती हैं, जैसा प्रेम सावन, भादों के बादलों को देख कर मोरों की पंक्तियां उनसे करती हैं। 'मेरा प्रेम वैसा है जैसा कि एक हिन्दूनारी पर्व के दिन किसी तीर्थ से रखती है। कमाल है, इन उपमाओं पर हिन्दी साहित्य रसिकों को गर्व होना चाहिए। इतना अगाध प्रेम होते हुए भी भगवान् कृष्ण ने राधा को क्यों छोड़ दिया—इस पर भी कवि ने अपनी कलम चलाई है।

जिस बात पर आज तक बड़े बड़े महात्माओं ने भी कुछ नहीं लिखा, जिस क्षेत्र में कोई नहीं उतरा, उस पर कवि ने अपनी प्रतिभा को दौड़ा कर सिद्ध करदिया कि 'जहाँ न पहुँचे रवि, 'वहाँ पहुँचे कवि'। सुनिये (पृ० ४२) श्रीकृष्ण राधा जी से कह रहे हैं—'इष्ट मूर्त्ति का एक ही स्थान पर रहना ठीक है। तुम्हारे यहां रहने पर ब्रजधाम मेरा उपासना-धाम बना रहेगा। मेरी लीलाओं के प्रेमियों के लिए ही नहीं, मेरे लिए भी उस अवस्था में यह वृन्दावन एक महामन्दिर—एक महा तीर्थ की तरह—पूजनीय रहेगा'। इस कल्पना पर कवि को कितनी दाद देना चाहिए—यह हम रसिक पाठकों पर ही छोड़ते हैं।

कृष्ण—चरित में कुतर्क करने के लिए कुतर्कियों का प्रधान अखाड़ा 'रासलीला' है। इस लीला पर भी कवि ने अपनी युक्ति चातुरी को अच्छी तरह आजमाया है। पृ० १४० में रास का गम्भीर रहस्य समझाया है। जिसका आशय है कि परब्रह्म बिना शक्ति की सहायता के संसार—चक्र को नहीं चला सकता। ब्रह्म का शक्तियों के साथ बिहार ही यह संसार है। भगवान् कृष्ण परब्रह्म हैं, तो गोपियां शक्तिस्वरूप हैं। आगे जो भगवान् को बहुत से काम करने थे, उनके लिए शक्तियों को अपने में संलग्न कर लेना आवश्यक था। बस, इसीलिए रासलीला रची गयी। शास्त्र के मर्मज्ञ मननशीलों के लिए इस समाधान में बहुत कुछ सामग्री भरी पड़ी है। आगे पृ० १४७ में लौकिक दृष्टि का समाधान भी मौजूद है, देखिए—

श्रीकृष्ण—मैं ठीक कहता हूँ—तुम्हारा इस प्रकार पर पुरुष के पास आना अनुचित है।

ललिता—पुरुष ? पुरुष ? तुम्हें पुरुष कहता ही कौन है ? तुम तो अभी आठ वर्ष के बालक हो।

भगवान् कृष्ण को एक मनुष्य मानकर उनकी रासलीला पर शङ्का करनेवालों को आंख खोलकर ये पंक्तियां पढ़नी चाहिये। क्या एक आठ वर्ष के बालक के साथ प्रेमवश कुमारियों वा स्त्रियों का हास्य, विनोद, खेलना, कूदना, नाचना, गाना—किसी भी समाज में अनुचित माना जाता है, या माना जा सकता है ?

यों चरित्र में स्वाभाविकता लाने का प्रयत्न करते और स्थान स्थान पर उचित और उपर्युक्त समाधान करते हुए भी कवि ने जगह जगह यह भी अपना आशय स्पष्ट प्रकट कर दिया है कि भगवान् कृष्ण की बाल लीलाएँ भावुक भक्तों के लिए हैं, कुतर्कियों का उनमें कोई अधिकार नहीं। कुतर्कियों को कवि ने अच्छी फटकारें बतलाई हैं। यथा—

गुत्थियां हैं यह विश्वास की इनको विश्वासी ही जानते हैं।
दासों की गुप्त ये अरदासें घट घट वासी ही जानते हैं॥

(पृ० ४२)

अगम लीला है लीलाधर बड़े लीलावतारी हो।
तुम्हें वह जान सकता है कृपा जिस पर तुम्हारी हो॥

(पृ० ८७)

'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः' इस श्रुति का और 'सो जाने जिहिं देहु जनाई', इस श्री गोस्वामीजी की उक्ति का क्या उत्तम छायानुवाद है।

रासलीला के आरम्भ में ही श्री राधिकाजी की इस शङ्का पर कि 'संसारवासी यह बातें नहीं समझेंगे', भगवान् कृष्ण के

मुख से स्पष्ट कहलाया है कि–'न समझें, आज की लीला में मुझे संसारवासियों को कुछ नहीं समझाना है' (पृ० १४१) आगे भी फिर श्रीराधिकाजी की शङ्का है कि—'कुतर्कवादी कहीं इस चरित्र पर कुतर्क न करने लग जाँय'। इस पर भगवान् कृष्ण का साफ़ उत्तर ही नहीं, पूरी फटकार है कि 'करने दो, उन्हें क्या मालूम, कि ये अजललनाएँ कौन हैं। यह तो मैं जानता हूं', इत्यादि, इत्यादि। (पृ० १४२)

सब से बड़ी समयानुकूल, रोचक और उपयोगी सामग्री इस नाटक में यह है कि इसमें सामयिक राजनीति (Politics) का खूब पुट लगाया गया है। कृष्णावतार के समय की देश की राजनैतिक दशा को कवि ने आज कल की भारत की दशा के रूप में चित्रित किया है, और उस समय के नेताओं के कार्यों द्वारा वर्त्तमान समयानुकूल उपदेश भी जनता को देने का प्रयत्न किया है। ये ही कारण है कि प्रस्तुत नाटक जनता को इतना प्रिय होगया है कि जहां यह नाटक कम्पनी जाती है, वहां धूम मच जाती है। नाटकों द्वारा ऐसे सामयिक उपदेश देना ही कवि का मुख्य कर्त्तव्य है, देश और काल की दृष्टि से अत्यन्त दूर की सीमाओं को पृथ्वी और आकाश के कुलाबों की तरह लेखनी की नोक से बेमालूम तौर पर सीदेना ही कवि की प्रतिभा का चमत्कार है। उस कर्त्तव्य का इस नाटक में आदि से अन्त तक खूब पालन हुआ है, वह चमत्कार यहां खूब चमक रहा है। नारद इस नाटक के प्रधान पात्र हैं। योगमाया ने सत्य कहा है कि 'भगवान् जब भूतल पर आयेंगे, तो मैं तो

निष्पक्ष कह दूंगी कि उन्हें सत्यलोक से मर्त्यलोक लानेवाले तुम्हीं उनके सच्चे पुजारी हो' (पृ० ४१, ४२) जहाँ नारद एक तरफ़ देश की दशा का चित्र खींचकर भगवान् का अवतार लेने के लिए तैयार करते हैं, वहाँ दूसरी ओर कंस को अधिक अत्याचार के लिए प्रेरित कर भगवान् के शीघ्र पधारने की सामग्री प्रस्तुत करते हैं। वे एक ओर—

'वहुत भ्रम चुका चौरासी में अव यह भ्रम तज मूढ़मते ?
भज नारायण, भज नारायण, नारायण भज मूढ़मते ?

[पृ० ३९]

जैसे भजन अपनी खड़ताल पर गाते हुए भक्ति रस वरसाते हैं, और दूसरी ओर जनता के नेता वनकर उसे अत्याचार सहने और अहिंसा व्रत एवं कर्त्तव्य-मार्ग पर दृढ़ रहने का उपदेश वे ही देते हैं। देखिए, आरम्भ में ही [पृ० ५] भगवान् विष्णु को लक्ष्य कर उनकी यह उक्ति कितनी मार्मिक और हृदयग्राहिणी है—"वाह ! भक्त व्याकुल हो रहे हैं—और भक्तवत्सल पूछते हैं कि 'क्या आज्ञा है' ? स्वार्थ, अन्याय, अत्याचार और स्वेच्छाचार हमारे गले घोट रहे हैं, और हमारे शान्तिस्वरूप इस समय भी शान्ति के साथ हमसे पूछ रहे हैं कि 'क्या आज्ञा है' ?

जगत् में आपके जन नित नई आपत्ति सहते हैं।
ज़ुबानें खींच ली जाती हैं गर कुछ मुंह से कहते हैं॥
छुरी गर्दन पै रहती है कुल्हाड़े सर पै रहते हैं।
जहाँ पर दूध वहते थे वहां अव रक्त वहते हैं" ॥

इत्यादि। आगे प्रथम अङ्क का तीसरा सीन [पृ० २७ से ३६] बिलकुल राजनैतिक दशा का चित्र है ! वहीं हम प्रथम वार नारद को 'नेता' के रूप में देखते हैं। जब प्रजा के कई मनुष्य कंस के अत्याचारों पर विचार कर रहे हैं, जब एक कहता है—

'हाय सीमा हो गई है आज अत्याचार की ।
सर उठाते हैं तो पड़ती खड्ग है सरकार की' ॥

दूसरा पूछता है—'फिर सोचा क्या है ?' इसका उत्तर क्या मार्मिक मिलता है कि 'दासों में सोचने की शक्ति ही कहाँ' ? बस, ऐसी ही बात चीत के अवसर में नारद पहुँचते हैं। वे उपदेश देते हैं 'इस समय प्रजा की तस्वीर का एक पहलू है आन्दोलन, और दूसरा पहलू है शान्ति।' यह उपदेश दूर तक चलता है, और इस में हम कवि की प्रतिभा द्वारा उट्टङ्कित ऐसी भविष्य वाणी भी पाते हैं—जो इस नाटक के लिखे जाने के समय भविष्य के गर्भ में रहने वाली, किन्तु अब प्रकट हो जाने वाली बातों को प्रकट करती है। जैसा कि 'हो जाने दो, मैं कहता हूं' कि सारे देश वासियों को उन बन्दीगृहों में बन्द हो जाने दो', इत्यादि। आगे छठा सीन भी राजनैतिक है। स्वार्थी लोग अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए साम्राज्य के नेता को किस तरह बहकाते हैं, कैसे कैसे झूंठे समाचार देकर उलटी पट्टी पढ़ाते हैं, इसका वहाँ अच्छा विवरण है। वहाँ एक नए नेता 'अक्रूर' का दर्शन होता है। ये राजमन्त्री होते हुए प्रजा का पक्ष लेते हैं, प्रजाजनों से मिलते जुलते हैं, और प्रजापर होने वाले अत्याचारों को रोकने की चेष्टा सदा प्राणपण से

करते हैं। अक्रूर का वर्ताव वर्त्तमान काल के इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री का स्मरण कराता है। इस सोन में जेल की दशाओं का भी सामयिक चित्र उतारा गया है, वह खूब रोचक है। इस में भी अक्रूर के मुख से कहलाई गई कई एक कवि की भविष्य-वाणियाँ हैं—

"जिन के बल से देश में था सद्भाव सुकाल।
काल कोठरी में पड़े वे भारत के लाल"॥
"राजसी भोजन के भोजी कर रहे उपवास हैं।
शाक भाजी की जगह मिलती उन्हें जब घास है॥
लात घूंसे ही नहीं डण्डों का सहते त्रास हैं।
मोल ले रक्खा हो मानो इस तरह के दास हैं॥
हैं न कारागार में रौरव नरक में बन्द हैं।
धर्म पै आरूढ़ हैं सच्चाई के पाबन्द हैं॥"

इत्यादि। इस सीन में नारद और अक्रूर दोनों नेता मिलते हैं—और नारद अक्रूर को समझाते हैं कि 'अत्याचार बढ़ने दो, तभी पुरुषोत्तम शीघ्र आयेंगे'। यहां भी 'अवतार वाद' पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

आगे द्वितीय अङ्क के तीसरे सीन में भी राजनैतिक चहल पहल मिलती है। वहाँ भेदनीति के प्रयोग का अच्छा चित्र है। टाइटिलों पर भी अच्छी दिल्लगी है। इसी सीन में ब्रज के दो बालकों—श्रीदामा और मनसुखा—का महाराज कंस से प्रत्यक्ष मुक़ाबिला करना इस बात को साफ़ दिखा रहा है कि अत्याचार

और भेदनीति से राजा का दबदबा प्रजा पर से जाता रहता है। और दबदबा गया कि राज्य की कोई सत्ता नहीं। आगे पृ० १८२ इसी का साक्षी है कि राजमन्त्री तक ऐसे राजा से समय पर बिगड़ खड़े होते हैं। यों ही और और जगह भी राजनैतिक पुट अच्छे हैं। विस्तार-भय से अब अधिक नहीं लिखा जाता।

इसके अतिरिक्त गोमहिमा और गोभक्ति पर भी अच्छी फड़कती और चमत्कारक उक्तियाँ इस नाटक में हैं। कृष्णावतार का गोमाताओं से जैसा सम्बन्ध है—उसके अनुसार *गोमहिमा का चित्रण इस नाटक में न होता तो यह नाटक की* एक बड़ी न्यूनता हो जाती। किन्तु कविरत्न जी ऐसा क्यों होने देते। आरम्भ में ही, भगवान् कृष्ण का अवतार होते ही [पृ० ६७] उनका गोमाता से सम्बन्ध स्थापित कर दिया है। माता देवकी गोकुल लेजाने के लिये कृष्ण को वसुदेव की गोद में देती हुई बड़ी मार्मिकता से कहती हैं कि—

> नहीं पीसके तुम अगर इस मैया का दूध।
> गोकुल में चिन्ता नहीं, है गैया का दूध॥

आगे हम भगवान् कृष्ण को [पृ० ९१] गौओं के लिये वंशी बजाता देखते हैं, [पृ० ९] गोपालन का महत्त्व अपने सखाओं को समझाता हुआ पाते हैं, [पृ० ९७] गौ में मातृ-भक्ति रखने का उपदेश उनके मुख से समझते हैं, [पृ० १२९] भारत जैसे कृषि-प्रधान देश के लिये गौ ही सर्वस्व है—इस

उनकी प्रौढ़ युक्ति को विचार का क्षेत्र बनाते हैं, और कंस की मल्लशाला में लड़ने के लिये उनके प्रस्तुत होते समय भी नन्द-बाबा से यही सुनते हैं कि 'गौमाता और यमुना मैया सहाई हैं, तो विजय होगी' (पृ० १०३)। ब्रह्मा की गोवत्स-हरण-लीला में तो कवि ने अद्भुत युक्ति से भगवान् कृष्ण का गौओं से संबन्ध स्थापित किया है। भगवान् कृष्ण ब्रह्मा से कहते हैं– "मैंने स्वयं जब गोमाता के अनेक बछड़ों का रूप बनाया तो गो-माता को जो मैं माता मानता था, वह नाता और भी दृढ़ हो गया, इसीलिए आज से गोमाता सारे देवताओं की माता हुई"। वहाँ गोमाता के शरीर में देवताओं का दर्शन भी कराया गया है, जिससे दर्शकों के हृदय-पटल पर पूर्ण रूप से गोभक्ति अङ्कित हो सकती है।

सम्पूर्ण नाटक के चरित्र से शिक्षा प्राप्त कराने के अतिरिक्त स्थान स्थान पर पात्रों के चरित्रों और उक्ति प्रत्युक्तियों द्वारा भी उत्तम उत्तम धार्मिक और सामाजिक शिक्षाएं इस नाटक में दी गई हैं। ऐसे अवसर की शिक्षाए चित्त पर बहुत अधिक प्रभाव डालती हैं–इस में कोई सन्देह नहीं। यद्यपि प्राचीन नाटकों की प्रणाली में शब्द द्वारा शिक्षा का महत्त्व नहीं माना गया है–तथापि वर्त्तमान युग की व्यञ्जना मार्ग से अल्पपरिचित अल्पज्ञ जनता के लिए इसकी आवश्यकता है। [पृ० १–२२] वज्राङ्ग के चरित्र और उसकी उक्तियों में कृतज्ञता और स्वामिभक्ति की आदर्श शिक्षा है, [पृ०–२३] उग्रसेन की उक्ति में नालायक लड़कों को ख़ूब फटकार बतलाई गई है जिससे पुत्र को पिता के प्रति कर्त्तव्य-पालन की अनुपम शिक्षा प्राप्त होती है। [पृ० ४४]

योगमाया के गान में परस्पर लड़ाई झगड़े करने वालों को क्या उत्तमता से फटकारा है—

अपने ही घर में लड़ा करते हैं जो राधेश्याम ।
उन्हीं घरवालों को फिर प्रेम सिखाने आओ ॥

[पृ० ६६] नारद के देवकी को समझाने में वीरमाताओं के प्रति अपने अनूठे कर्त्तव्य की शिक्षा है—"क्षत्राणी माता ! पृथ्वी का भार हरण करने के लिए पृथ्वी का एक एक परमाणु इस बालक को तुम से माँग रहा है । सहन करो देवकी माता...... सहन करो" इत्यादि ।

[पृ० ११३] भगवान् कृष्ण के मित्रों से किए गए संलाप में प्राचीन सभ्यता का अच्छा समर्थन है । पृ० ११५ में सङ्गठन का मार्के का उपदेश है । [पृ. ११८] बलदाउ की उक्ति में वीर भ्राताओं के अपने छोटे भ्राताओं के प्रति कर्त्तव्य की फड़कती हुई शिक्षा है, और [पृ. १६८] वसुदेव का बन्धन खोलते समय नारद की इस उत्तम उक्ति में पुत्रधर्म पर फिर बलात् ध्यान खींचा गया है—

'एक बेटा वो है जिसने बाप को बन्दी किया ।
एक बेटा ये है बन्धन खोलता है बाप के' ॥

इत्यादि । भगवान् कृष्ण का व्रजचरित व्रजभाषा में जैसा सोहता है, वैसा किसी दूसरी भाषा में फिट नहीं हो सकता । कविता में भी व्रजभाषा की प्रधानता रसिकों के हृदय से छिपी नहीं है, चाहे आजकल के 'काष्ठकुड्यश्मसन्निभ' इसपर विवाद

किया करें। अस्तु, कविरत्न जी इस बात को खूब जानते हैं। अतएव आरम्भ में ही आपने नट—नटी-संवाद में इस प्रश्न पर चर्चा चलाई है, और नाटक को स्टेज के उपयोगी बनाने के लिए बोलचाल की भाषा काम में लेने की लाचारी प्रकट की है। है भी ठीक, ब्रजभाषा में पूरा नाटक लिखकर उसे समयोपयोगी बनाना तो आज कल असम्भव ही है। ब्रजभाषा में कविता लिखकर उसे नाटक के स्टेज पर लाना भी बहुत कम सम्भव है। तथापि कविताओं में कवि के मुख से कहीं कहीं बलात् ब्रजभाषा निकल पड़ी है। इस के उदाहरण देखिए—

'नहीं देखतीं क्या वे अंखियां इन अंखियन के नीर—(पृ. ३३)

सारी ब्रजवाल कठपूतरी सी नाच रहीं

ऐसी आज बाँसुरी बजी है नन्दलाल की। (पृ. १४६)

धेनुके चरैया ने रास के रचैया ने

छाज के छकैया ने छत्रपति मारो है। इत्यादि (पृ० १९०)

भूमिका लम्बी हो गई है। और यह केवल भूमिकाही नहीं रही, किन्तु एक प्रकार की इस नाटक की समालोचना हो गई। तब समालोचना में गुणों के समान दोष बताना भी समालोचक का कर्त्तव्य हो जाता है। केवल गुण ही गुण बताने से उसपर पक्षपात का आरोप होना संभव है। इसलिए जो प्रकृत नाटक के कुछ दोष हमारी दृष्टि में आए हैं—उनका भी संक्षेप से उल्लेख कर देना हम आवश्यक समझते हैं।

प्रथमतः इस नाटक का नाम हमारे विचार से कंसवध नाटक होना चाहिए था, क्योंकि कंस के अत्याचारों से ही इसका उपक्रम है और कंस की मृत्यु पर ही समाप्ति है। 'कृष्णावतार' नाम इस नाटक का यों नहीं फिट होता कि कृष्ण का पूरा चरित्र इस में नहीं है। यद्यपि कवि ने दो तीन नाटकों में मिलाकर कृष्णावतार के सम्पूर्ण चरित्र को नाटक रूप में ग्रथित करने का विचार अभिव्यक्त किया है, किन्तु ऐसी दशा में भी जो चरित्र जिस नाटक में प्रधान हो उसी के अनुसार उस नाटक का नाम होना उपयुक्त होता है, जैसा कि इसके आगे के नाटक का नाम 'रुक्मिणी मङ्गल' है।

पृ० ४ में पठ्य काव्य को दृश्य और श्रव्य काव्य से जो पृथक् लिखा है वह प्राचीन परिपाटी से विरुद्ध है, क्योंकि काव्य के दो ही भेद माने जाते हैं, दृश्य और श्रव्य। पठ्य और श्रव्य का अर्थ एक ही है। पृ० ४०–४३ में योगमाया और नारद के सम्वाद में नारद के सामने योगमाया का दर्जा कुछ छोटा दरसाया गया है, यह ठीक नहीं मालूम होता। पृ० ४९ में अक्रूर का कंस के साथ सम्वाद राजा और मन्त्री की मर्यादा से कुछ दूर चला गया है। एक प्रकार से दर्बार की मर्यादा को कुछ ठेस लगी है। पृ० १४२ में राधा का क्षीरसागर से आना आगम मर्यादा के विरुद्ध है, क्योंकि राधा का सम्बन्ध गोलोक से है, क्षीरसागर से नहीं। पृ० १६८ में कवि ने कंस-वध से पहले ही वसुदेव देवकी के कारागार से छुड़ाने की कल्पना की है, इसका औचित्य समझ में नहीं आता। कदाचित्

यह सोचा गया हो कि कंस का वध होते ही नाटक समाप्त कर दिया जाय। किन्तु हमारी दृष्टि से कंस जैसे महा प्रभावशाली महाराजा के जीवित रहते उसकी जेल तक टूट जाना अस्वाभाविक सा हो गया है। पृ० १६५ में कृष्ण को वसुदेव के प्रति समर्पित करते हुए नन्द की उक्ति में जो निर्मोहीपन है वह भी कुछ अस्वाभाविक लगता है, और पृ० १७१ में उग्रसेन का कंस को मारने के लिए कहना सर्वथा अस्वाभाविक है। 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति' इस लोकप्रसिद्ध स्वभावोक्ति का वहाँ एक प्रकार से तिरस्कार ही दीखता है। कहीं कहीं (पृ० १५३, १८२) 'खिलैया' 'चखैया' आदि शब्द ऐसे आगए हैं जो किसी भाषा में प्रयुक्त नहीं है और कहीं (पृ० १७१ आदि) छन्द में अस्वाभाविकता मालूम होती है। नाटक के अन्त में आशीर्वाद होना एक प्राचीन रीति है—उसका भी पालन नहीं हुआ।

इतना हम स्पष्ट कह देते हैं कि ये दोष केवल कर्त्तव्य पालन की दृष्टि से लिखे गये हैं, इन से नाटक के उत्कर्ष में कुछ भी न्यूनता नहीं होती। इन्हें पाठक गण वैसा ही समझें जैसा कि एक बहुत सुन्दर गोरे बालक के ललाट पर नज़र न लगने के लिए एक काजल का चन्द्रमा बना देते हैं, और उससे उसकी शोभा और अधिक हो जाती है।

अब हम अपने वक्तव्य को समाप्त करते हुए हिन्दी साहित्य-रसिकों से पूर्ण आशा करते हैं कि व इस नाटक को साहित्य-क्षेत्र में उपयुक्त स्थान देंगे। जैसा सुयश इसने स्टेज पर प्राप्त

किया है वैसा ही साहित्यगोष्ठी में भी यह प्राप्त करे—यह हमारी हार्दिक अभिलाषा और सम्भावना है। जगन्नियन्ता जगदीश्वर ऐसे नाटकों से हिन्दी साहित्य की सौभाग्यवृद्धि कराने में पूर्ण सहायक होवे।

गिरधर शर्मा चतुर्वेदी
जयपुर।
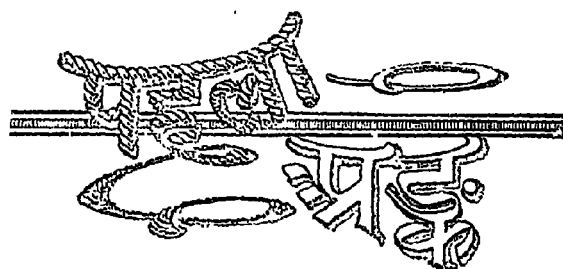
वीर अभिमन्यु

इस नाटक का मूल्य १)

श्रीकृष्ण चरित्र
का
प्रथम भाग

श्रीकृष्ण अवतार

मङ्गलाचरण

(गायन नं० १)

जय गिरधर, जय जगधर, जन के भर्त्ता।
पालक पोषक भय हर्त्ता। कर्त्ता धर्त्ता॥
दीनबन्धु, दीनानाथ दीन के दाता।
जो ध्याता, गुण गाता, चरणों में मन लाता-पाता प्रसाद।
आता न पास उसके कोई विषाद॥
हरषाता, पुलकाता, रंगराता, मदमाता।
फिरता मगन हो ले आशीर्वाद॥
धन जन में, तन मन में, घर दर में।
व्यापक तुम्हारा ही तेज है त्राता॥

नट—

नव-जल-धर-श्यामं, पीत-कौशेय-वासम् ।
श्रुति-चलित-मनोज्ञं कुण्डलं चारु-हासम् ।
नख-धृत-वर-शैलं, वेणु-नादं रटन्तम् ।
निज-जन-भय-हारम्, नौमि गोपी-कुमारम् ॥

एक बालिका—

जिस भूमि पै वृक्ष करील के हैं, खारी जल-कूप जहाँ दिखलावें ।
बन्दर उत्पात करें जहाँ पर, गारी देकर जहाँ लोग बुलावें ॥
उस भङ्गड़ जङ्गड़ से पुर का, वैकुण्ठ समान जो मान बढ़ावें ।
वे ही गिरधारी विहारी, निहार हमारी भी ओर, हमें अपनावें ॥

दूसरी बालिका—

मथुरा में जो जन्म लें चोरी ही से फिर चोरी ही से जो गोकुल जावें ।
निज रूप को ऐसा चुरायें कि जो,ब्रह्मा और इन्द्र भी भेद न पावें ॥
चितचोर कहा कर भी जो सदा-संसार में माखन-चोर कहावें ।
बस वे ब्रजवारे हमारे सभी, भीतर बाहर के दोष चुरावें ॥

नट—जय जय गिरधर, जय वंशीधर, जगधर, श्रीधर, मनहर, मुरहर, सर्वगुणागर, करुणासागर, दनुजविदारण, दुरितनिवारण, दिव्यविलोचन, वन्दिविमोचन, कंसनिकन्दन, देवकीनन्दन—

[नटी का प्रवेश]

नटी—ओ हो हो हो, आज तो बड़े उत्साह के साथ मङ्गलाचरण किया जा रहा है !

नट—आओ प्रिये आओ, तुम भी हमारे इस आनन्द में सम्मिलित होकर आनन्दमयी बन जाओ ।

नटी—इस महानन्द का कारण क्या है ?

नट—कारण ? कारण यह है कि आज हम संसार की नाटकशाला के सूत्रधार को अपनी नाटकशाला में लायेंगे।

नटी—अर्थात् ?

नट—नटवर, नटनायक, नटनागर, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का नाटक रचायेंगे, अपने इष्टदेव के गुणानुवाद गायेंगे :—

हठ वश कूदे आज हम, चरित-समुद्र मँझार।
जिस प्रभु का है चरित यह, वही करेगा पार॥

नटी—तो क्या श्रीमद्भागवत के सम्पूर्ण दशमस्कन्ध को खेलियेगा ?

नट—नहीं, आज तो :—

कृष्णजन्म से कंसनिधन तक खींच मनोहर चित्र।
दिखलायेंगे ललित-कलित-व्रजपति का बाल-चरित्र॥

नटी—तो उसमें राधा रानी भी आयेंगी न ?

नट—अवश्य। वे तो इस नाटक की महाशक्ति हैं। श्रीमद्भागवत में तो श्रीकृष्णचरित्र के स्थान में श्रीकृष्णचरित्र ही है, परन्तु हमारे इस अभिनय में श्रीकृष्णचरित्र के साथ साथ श्रीराधारानी भी रहेंगी। महाशक्ति महापुरुष से पृथक् न होगी।

नटी—तो राधारानी का चरित्र कहां से लीजियेगा ?

नट—गर्ग-संहिता से और व्रजभूमि की प्रचलित कथाओं से।

नटी—तब तो नाटक की भाषा भी व्रजभाषा ही रक्खी जायेगी ?

नट—जी तो यही चाहता है, परन्तु दर्शकों पर अपने भावों का प्रभाव डालने के लिये, हमें वही भाषा काम में लानी पड़ेगी

जो इस समय बोल चाल की भाषा है। कारण कि नाटक पाठ्य काव्य नहीं, श्रव्य और दृश्य काव्य कहलाता है। अच्छा, अब तैयार हो जाओ, लीलामय की लीला का आज इतना रस बरसाओ, भक्ति और प्रेम का ऐसा रंग जमाओ, कि भक्त समाज मुदित होजाय, हिन्दूजाति के महापुरुष का पवित्र चरित्र देख कर दर्शक समाज चकित हो जाय :—

तख्ता तख्ता भी बोल उठे, ब्रजवल्लभ नटनागर की जय।
पर्दे पर्दे से भी निकले, मनमोहन मुरलीधर की जय॥
रङ्गस्थल में देखो गूंजे, गिरवरधारी ब्रजराज की जय।
दर्शकमंडली पुकार उठे, श्री कृष्णचन्द्र महाराज की जय॥

(गायन नं० २)

सब—

भारत में फिर से आजा, गिरिवर उठानेवाले।
सोतों को फिर जगा जा, गीता के गानेवाले॥
गूंजा था जिससे मधुवन, नाचा था जिससे त्रिभुवन।
वह तान फिर सुना जा, वंशी बजानेवाले॥
दुख द्वन्द्व बढ़ रहे हैं, दुष्काल पड़ रहे हैं।
फिर कष्ट सब मिटा जा, गउएँ चरानेवाले॥
हैं "राधेश्याम" निर्बल, जन तेरे भक्तवत्सल।
बिगड़ी को फिर बना जा, बिगड़ी बनानेवाले॥

[जाना]

"क्षीरसागर"

(गायन नं० ३)

नारद—

सर्वेश सर्वसुधार को, अवतार लो अवतार लो।
आओ जगत् उद्धार को, अवतार लो अवतार लो॥
डगमग है नाव उबार लो, कर्त्तार तुम पतवार लो।
अब तार लो संसार को, अवतार लो अवतार लो॥
सर्वत्र स्वार्थ अनीति है, न है धर्म कर्म्म, न प्रीति है।
भूले हैं सब भर्त्तार को, अवतार लो अवतार लो॥
'बढ़ता है अत्याचार जब, होता हूं मैं साकार तब'।
भूलो न इस इक़रार को, अवतार लो अवतार लो॥
सब ओर शान्ति-प्रसार हो, सर्वत्र सद्व्यवहार हो।
फैलाओ ऐसे प्यार को, अवतार लो अवतार लो॥

—०—

भ० विष्णु—(प्रकट होकर) देवर्षे, क्या आज्ञा है ?

नारद—वाह ! भक्त व्याकुल हो रहे हैं और भक्तवत्सल पूछते हैं कि 'क्या आज्ञा है ?' स्वार्थ, अन्याय, अत्याचार और स्वेच्छाचार हमारे गले घोंट रहे हैं और हमारे शान्ति स्वरूप इस समय भी शान्ति के साथ हम से पूछ रहें हैं कि 'क्या आज्ञा है ?' त्रिलोकीनाथ, कंस के अत्याचारों का क्या आपको पता नहीं ? उस दुराचारी के दुराचारों को क्या आप जानते नहीं ? आपकी परम प्यारी गौएँ, आपके मुख से उत्पन्न होने वाले ब्राह्मण, और आपके हृदय के समान प्यारे सन्तजन, आज छातियाँ तोड़ कर, गले फाड़कर, सर उठा कर, त्राहि त्राहि कर रहे हैं। क्या उनकी करुणाभरी पुकारें आपके कानों तक नहीं पहुँचतीं ? सच्चिदानन्द ! या तो अपने प्यारे भारतवर्ष को इस महाकष्ट से उबारिये, नहीं तो सदैव के लिये उसे क्षीरसागर ही में डुबो दीजिये :—

जगत् में आपके जन नित नयी आपत्ति सहते हैं ।
जुबानें खींच ली जाती हैं,गर कुछ मुंह से कहते हैं ।।
छुरी गर्दन पै रहती है, कुल्हाड़े सर पै रहते हैं ।
जहाँ पर दूध बहते थे वहां अब रक्त बहते हैं ।।
उठे अब चक्रवाला हाथ, चक्कर में असुर आयें ।
न ऐसा हो कि खम्भे धर्म्म के हिल जायँ, गिरजायें।।

भ० विष्णु—शान्त, महर्षिवर शान्त, मेरे प्यारे नारद शान्त, पापी का पाप उस प्रबल वायु के समान होता है जो किसी यन्त्र विशेष में भरी जाती है। ज्यों ज्यों वह वायु भरती जाती है त्यों त्यों वह यन्त्र फूलता जाता है। अन्त में भराव जब सीमा से बाहर हो जाता है तो उस वायु द्वारा ही वह यन्त्र फट जाता है। इसी तरह-समय आ रहा है कि कंस का पाप ही कंस को खा जायेगा; फिर भूमण्डल ही क्या, त्रैलोक्य-मण्डल शान्तिमय हो जायेगा:—

चढ़ेगा बाण क्षण भर में, धनुष पर हाथ धरने दो।
खिचेगी आन प्रत्यञ्चा, निशाना ठीक करने दो॥
समय पर पाप का घट, आप ही बस फूट जायेगा।
अभी खाली है जितना, और उतना उसको भरने दो॥

नारद—उस समय की प्रतीक्षा वह कर सकता है जिसका चित्त स्थिर हो। देव-मण्डल आज अस्थिर है, अस्थिर हृदयों की भी आपको कुछ ख़बर है? वह देखिये, मुनियों और मनीषियों के शीश ठोकरों से तोड़े जा रहे हैं! उधर देखिये, ब्राह्मणों के यज्ञोपवीत पैरों से रौंदे जा रहे हैं! अब नहीं देखा जाता! अब नहीं देखा जाता!! अब नहीं देखा जाता!!! दीनबन्धो! दया करो। कृपा सिन्धो! कृपा करो:—

सहारे आप के जो हैं—उन्हीं पर आज संकट हैं।
बने सब यज्ञ-मण्डप, इन दिनों मुनियों के मरघट हैं॥
न भक्तों को ठिकाना आपके भारत में मिलता है।
अचम्भा है कि फिर भी आपका आसन न हिलता है॥

भ०विष्णु—अभी कहाँ ? अभी। अत्याचार की सीमा कहाँ हुई है ?

नारद—क्या अभी और कसर रह गयी है ?

भ० विष्णु—हां, अभी और कसर रह गयी है। अभी अबलाओं पर अत्याचार कहाँ हुआ है ?

नारद—क्या अबलाओं पर अत्याचार भी इन आँखों से देखना पड़ेगा ?

भ० विष्णु—हाँ, देखना पड़ेगा। जब अबलाओं पर अत्याचार आंखें देखेंगी तभी मेरा आसन भी हिलता हुआ देखेंगी। उस समय मैं आऊंगा। अकेला ही नहीं, अपनी सब शक्तियों के साथ आऊंगा, और अपनी भूमि का भार मिटाऊंगा।

नारद—तो क्या अचानक आइयेगा ?

भ० विष्णु—नहीं, प्रकट होके आऊंगा, कहके आऊंगा, राक्षस को सूचना देके, सावधान करके. आऊंगा।

नारद—कब ?

भ० विष्णु—कब? नहीं जानते तो सुनो कब। जब वसुदेवजी के साथ कंस की बहन देवकी जी का विवाह होजायगा और कंस वर-वधू को रथ में बिठाकर थोड़ी दूर तक पहुंचाने के लिये जायेगा, उसी समय एक आकाश-वाणी होगी कि महारानी देवकी का आठवाँ पुत्र कंस का वध करेगा और संसार में शान्ति फैलायेगा।

नारद—इस से प्रयोजन?

भ० विष्णु—प्रयोजन अभी तक नहीं समझे? इस रीति से मैं असुर को अपने आगमन की सूचना दूँगा। यदि सूचना पर भी उसने अपनी असुरता का त्याग नहीं किया, तो समझ रहे हो क्या होगा?

नारद—क्या होगा?

भ० विष्णु—होगा यही कि वह असुर महारानी देवकी को कष्ट देगा। उस अबला को मार डालना चाहेगा। उसी समय इस क्षीरसागर की लहरों में ज्वारभाटा आ जायेगा और पाप के बोझ से दबी हुई पृथ्वी का एक एक कण मेरा चक्र सुदर्शन बन जायेगा। बस, फिर क्रमशः मेरी शक्तियाँ अवतीर्ण होजायेंगी। आठवें पुत्र के नाम से मैं स्वयं सोलह कला का अवतारी कहला कर आऊँगा, और श्रीकृष्ण के नाम से संसार को शान्तिमय बनाऊँगा।

नारद—यह सोलह कला की बात समझ में नहीं आयी ।

भ० विष्णु—इस का यह अर्थ है कि सारे संसार में मेरी कलायें हैं । वृक्षों में एक कला, स्वेद से उत्पन्न होने वाली सृष्टि में दो कलायें, अण्डज में तीन कलायें, पशुओं में चार कलायें, और पांच कलाओं से लेकर आठ कलाओं तक मैं मनुष्यों में रहता हूँ । आठ कलाओं से आगे जब किसी की सृष्टि होती है तो वह अवतार कोटि में समझी जाती है । तुम्हें स्मरण होगा कि मेरा रामावतार बारह कला का था । परन्तु यह कृष्णावतार सोलह कला का होगा ।

नारद—यह क्यों ?

भ० वि०—यह यों कि रामावतार की अपेक्षा इस समय संसार में पाप अधिक हैं । तब केवल एक रावण ही था और अब अकेला कंस ही नहीं, शिशुपाल आदि अनेक असुरों का दल पृथ्वी को धर्म्म-रहित कर रहा है ।

नारद—धन्य ! शंका निवृत्त हुई । इन आशाभरे शब्दों को सुन कर शान्ति प्राप्त हुई । अब हमारा कर्त्तव्य ?

भ० विष्णु—उस समय की प्रतीक्षा करना ।

नारद—और आपका काम ?

भ० विष्णु—ठीक समय पर अवतार लेना ।

नारद—और ?

भ० विष्णु—संसार का उद्धार करना :—

हमें जो प्यार करते हैं, हमारे भी वे प्यारे हैं ।
सदा हम उनसे हारे हैं हमारे जो सहारे हैं ॥
हमारे जब कि तुम हो तो, तुम्हारे हम न क्यों न कर हों ।

नारद—हमारे हो ?

भ० विष्णु—तुम्हारे हैं, तुम्हारे हैं, तुम्हारे हैं ॥

(भगवान् विष्णु का अन्ध्यान होना)

नारद—जय जय त्रिलोकीनाथ की जय ।

—०—

"राजमार्ग"

(देवकी जी अपने पति वसुदेव जी के साथ ससुराल जा रही हैं। कंस उन्हें रथ पर बिठाये पहुंचाने जा रहा है। रथ के आगे बहुत से सिपाही तथा बहुत सी दासियाँ हैं)

(गायन नं० ४)

गायिकायें—

जुग जुग लों जिये जगमगाये, जगत्पति यह जोड़ी जग में।
जब लों चन्द्र गगन पर राजे, जब लों नभ पर सूर्य विराजे।
फले फूले सदा सुख पाये, जगत्पति यह जोड़ी जग में।
जब लों है गंगाजल प्यारा जब लों है जमुना की धारा।
यश कीरति के डंके बजाये, जगत्पति यह जोड़ी जग में।

—०—

आकाशवाणी—जय सच्चिदानन्द।

कंस—(आश्चर्य से) हैं!

आकाशवाणी—अरे कंस, तेरे अत्याचारों से पृथ्वी अकुला रही है और वह गोरूप धारण करके क्षीरसागर में शयन करनेवाले नारायण को जगा रही है।

कंस—(रथ से उतर कर स्वगत) हैं! यह मेरे हृदय में कौन बोल रहा है? मैं यह क्या सुन रहा हूं? पृथ्वी मेरे अत्याचारों से अकुला रही है और वह क्षीरसागर में शयन करनेवाले नारायण को जगा रही है?

आकाशवाणी—हां, हां, और भी सुन—

इस देवकी माता का, अष्टम जो लाल होगा।
बतलाये देते हैं हम, वह तेरा काल होगा॥

कंस—हैं! देवकी का आठवाँ लाल! मेरा काल! झूठ, सब झूठ! काल को तो मैंने बन्दी कर रक्खा है। तैंतीस कोटि देवताओं को अपना दास बना रक्खा है। सूर्य्य और चन्द्र मेरी आज्ञा पर प्रकाश करते हैं। इन्द्र और यम मेरे घर का पहरा देते हैं। कुबेर मेरा कोठार संभालता है। वरुण मेरा पानी भरता है। मैं और इस विभीषिका से डर जाऊँ? कदापि नहीं:—

हिमालय और सागर, मेरी क्रीड़ा के निकेतन हैं।
धरणि आकाश दोनों मानते मेरा ही शासन हैं॥

चरण भी धर नहीं सकता है नारायण मेरे घर में ।
कि सोता है मेरे डर से सदा वह क्षीरसागर में ॥

(कुछ सोच कर) अच्छा, कदाचित् यह गुप्त योजना सत्य भी हो तो चिन्ता नहीं। जिस देवकी का आठवां लाल मेरा काल होगा उसी को आज नष्ट किये डालता हूँ। बस फिर कुछ खटका नहीं।

न लोहा ही रहेगा तो बनेगी फिर छुरी क्योंकर ?
न होगा बांस ही तो फिर बजेगी बांसुरी क्योंकर ?
उखाड़ूंगा मैं जड़ ही को, बढ़ेगी डाल फिर कैसे ?
न होगी देवकी ही जब तो होगा लाल फिर कैसे ?

(देवकी को रथ पर से खींचता है) उतर, उतर, हतभागिनी ! रथ से नीचे उतर !

देवकी—भाई ! भाई !!

कंस—देवकी ! देवकी !!

मैं काल की ज्वाला हूँ मैं विष का महासागर ।
भौंचाल का मैं वेग, मैं प्रारब्ध का चक्कर ॥
जब तक हृदय में शान्ति है तब तक मलय हूँ मैं ।
भर जाऊं अगर क्रोध में तो फिर प्रलय हूँ मैं ॥

देवकी—भाई तुम्हारी आंखें..............

कंस—हाँ, हां, यह आंखें तुझे भस्म करने को अब ज्वाला-मुखी हो गयी हैं। यह हाथ तुझे नष्ट कर डालने को अब यमदण्ड बन गये हैं।

देवकी—मेरा अपराध ?

कंस—कुछ नहीं।

देवकी—दोष ?

कंस—कुछ नहीं।

देवकी—तो फिर इतना क्रोध क्यों है, क्या मस्तक फिर गया है ?

कंस—हां हां, मस्तक ही फिर गया है। यह फिरा हुआ मस्तक जब तक तेरे मस्तक के टुकड़े टुकड़े न कर देगा, ठीक न होगा। बस तैयार होजा :—

कुण्ठित हुई है इस समय सब शक्ति ज्ञान की।
प्यासी है मेरी खड्ग तेरे रक्तपान की॥

देवकी—भैया, भैया, मैं तेरी बहिन, तू मेरा कुलदीपक भाई, भाई होकर बहिन के साथ ऐसी बुराई ? :—

आश्चर्य कि कांटा बनी पँखुड़ी है सुमन की।
भाई की खड्ग चलती है गर्दन पै बहन की॥

कंस—

हाँ हाँ चलेगी खड्ग ये गर्दन पै बहन की।
क्यारी सिंचेगी रक्त से, जीवन के चमन की॥

देवकी—ऐसे बोल न बोल, मेरी दशा को देख, मेरी अवस्था को देख। अभी मेरा विवाह हुआ है—मेरे सुहाग को देख। मैं

सासुरे जा रही हूँ, मेरी माँग के सिंदूर को देख। मैं तेरे पैरों पड़ती हूँ, मेरी आंखों के आंसुओं को देख !

कंस—सब देख चुका, तेरी माँग का सिन्दूर अब मेरी आंखों की लाली बन गया है; तेरे नेत्रों का जल अब मेरे लिये हलाहल हो गया है—

वह माँग बिगड़ जाय कि जो लाल हो मुझ पर ।
वह चाल ही मिट जाय, जो भौंचाल हो मुझपर ॥
वह जाल ही टूटे कि जो जञ्जाल हो मेरा ।
(स्वगत) हो नष्ट ऐसी कोख, जहाँ काल हो मेरा ॥

देवकी—भैया, मैं अबला हूँ, न्याय चाहती हूँ ।

कंस—मैं अन्यायी हूँ ।

देवकी—हाय, आकाश तू देख रहा है ? यह मेरा भाई है ! पृथ्वी, तू देख रही है ? यह मेरा भाई है !—

पलट दुनिया गयी, सोया विधाता धूर ढलती है ।
बड़े भाई के हाथों से बहन पर खड्ग चलती है ॥
जगत् के रहनेवालो, आज आंखें बन्द करलो तुम ।
कि द्वारे लग्न मण्डप के, चिता दुलहन की जलती है ॥

कंस—अच्छा संभल जा। (मारना चाहता है, वसुदेव रथ से उतरते हैं)

वसुदेव—दया, दया, हे क्षत्रियकुलभूषण ! दया। तुम्हारा यह बहनोई वसुदेव, तुम से प्रार्थना करता है कि तुम भाई होकर

बहन पर ऐसा अत्याचार न करो, युवराज होकर एक अबला पर इतना अन्याय न करो। देखो अभी तक इसके पैरों में विवाह की महावर लगी हुई है, अभी तक इसकी हथेली शकुन की मेंहदी से रंगी हुई है, इसकी यह चूड़ियां तुम्हारी ही पहनायी हुई हैं, इस की यह लटें तुम्हारी ही बँधवाई हुई हैं।

कंस—

तब बांधी थीं, अब खोलूंगा, खींचूंगा और मरोड़ूंगा।
अब नहीं जरूरत है इनकी, इन चुड़ियों को मैं तोड़ूंगा॥

वसुदेव—तो मैं भी अपने जीते जी इस की यह दुर्दशा नहीं देख सकूंगा।

कंस— नहीं देख सकोगे तो अपनी आंखें फोड़ लो।

वसुदेव—क्या कहा? आँखें फोड़ लो? तुम हमारी स्त्री पर खड्ग उठाओ और हम आंखें फोड़ लें? तुम हमारे सामने हो एक अबला को मार डालने के लिए तैयार हो जाओ और हम आंखें फोड़ लें?

फोड़ लें आँखें तो हम आये वृथा संसार में।
जन्म लेना था किसी कापुरुष के परिवार में॥
शूर की सन्तति कहाकर, किस तरह मुंह मोड़लें?
सामने अन्याय देखें, और आँखें फोड़लें?

कंस—तो तुम भी तैयार हो जाओ। इस खड्ग की भेंट आज दो दो मूर्तियां होंगी, इस राजमहल से आज एक साथ दो दो अर्थियां उठेंगी।

वसुदेव—कंसराज, मुंह सँभालो।

कंस—वसुदेव, आंखें न निकालो।

(कंस के इशारे से उसके सामन्त वसुदेव को पकड़ लेते हैं। कंस वसुदेव को मारना चाहता है, देवकी मध्य में आजाती है)

देवकी—क्षमा, क्षमा, भैया क्षमा कर। उन्हें न मार, मुझे मार। मैं अब लज्जा को छोड़ कर कहती हूँ कि मेरे पति को न मार, मुझे मार। रँडापे के दुख से प्रथम ही मेरा उनके श्रीचरणों में निछावर हो जाना अच्छा है, उनके मरने के पहले ही मेरा उनके सामने मर जाना अच्छा है।

पति के पगों के सामने पत्नी जो मर गयी।
समझो कि वह संसार के सागर से तर गयी॥

वसुदेव—प्रिये! प्रिये!!

देवकी—स्वामी! स्वामी!!

वसुदेव—तुम क्यों इस राक्षस से मेरे लिये अनुरोध कर रही हो? पहले मुझे ही मरने दो, क्षत्रियों की भांति नहीं तो कायरों ही की भांति मरने दो। मेरे मर जाने के बाद तुम यह समझ कर मरना कि मैं सती होती हूँ।

देवकी—नहीं, ऐसा नहीं होगा, पहले मेरा ही मरण होगा। धन्य है वह मृत्यु जो तुम्हारे सामने हो, धन्य है वह आत्मा जो तुम्हारे श्रीचरणों का दर्शन करती हुई इस शरीर से पृथक् हो। (कंस से) उठा, अपनी खड्ग उठा,—

उसका इधर हो वार, उधर वार दूँ मैं प्राण।
जीते जी अपने नाथ पै, बलिहार दूँ मैं प्राण॥

कंस—अच्छा तो ले।

(देवकी को मारना चाहता है, महाराज उग्रसेन आकर रोकते हैं)

उग्रसेन—ख़बरदार! यह कैसा अत्याचार? अपनी बहन पर खड्ग का प्रहार? दुष्ट, कुलाङ्गार, कुलघाती, उत्पाती, तुझे ऐसा नीच कार्य्य करते हुए लज्जा नहीं आती?

कंस—तुम यहां इस समय क्यों चले आये?

उग्रसेन—वाह! पुत्र पिता से कह रहा है कि तुम यहां इस समय क्यों चले आये? तू इन निरपराधियों का रक्त बहाए और तेरा पिता, इस मथुरा नगरी का राजा उग्रसेन, यहां आने भी न पाये? यह दोनों तेरे कौन हैं?

कंस—कौन हैं?

उग्रसेन—बहन और बहनोई।

कंस—नहीं, वैरिन और वैरी। चले जाइये, आप अपने

बड़प्पन को रखना चाहते हैं तो यहां से चले जाइये। अन्यथा इस समय पिता के पद का भी मान नहीं रहेगा। आप बीच में आयेंगे, तो खड्ग किस पर चले यह ध्यान नहीं रहेगा।

उग्र०—चलने दो, चलने दो, धर्म यही है :—

बच्चों के आगे बाप का सर जाय तो जाये।
पर बाप के होते उन्हें कुछ आंच न आये॥

कंस—मेरी खड्ग को इस धर्म्म की पर्वा नहीं है।

उग्र०—तो मुझे भी चिन्ता नहीं है :—

चाहे इस बूढ़े शरीर पर, चल जायें अनेक तल्वार।
पर हम होने नहीं देयँगे, अपने होते अत्याचार॥
हमको तो अब मरना ही है, सिर पर नाच रहा है काल।
पुत्री का और जामाता का, देख नहीं सकते यह हाल॥

कंस—नहीं देख सकते तो तुम जानो—

बट्टा न लगने पायगा, वीरों की आन में।
यह खड्ग अब तो जा नहीं सकता है म्यान में॥

उग्र०—भूल जा, भूल जा, इस विचार को भूल जा; अत्याचार के समय नीति के इस उद्गार को भूल जा; यदि और सर उठायेगा, तो यह वृद्ध उग्रसेन अभी तेरे हाथों में हथकड़ियाँ डलवायेगा; तुझे बन्दी बनायेगा।

कंस—बन्दी? कौन? कंस? किस की आज्ञा से?

उग्र०—मेरी आज्ञा से, इस मथुरा के राजा उग्रसेन की आज्ञा से।

कंस—तुम्हारी आज्ञा अब समाप्त होगयी। तुम्हारे बुढ़ापे के साथ साथ तुम्हारा शासन काल भी अब बूढ़ा होगया। आज से मुझे मथुरेश कहो, मैं मथुरा का राजा हुआ। यह तुम्हारे सभासद् इस समय से मेरे सभासद हैं। तुम्हारे नहीं, अब से यह मेरे सेवक हैं :—

देखूं तो किस के हाथ में पड़ती है हथकड़ी।
पहुँचा पकड़ के किस का जकड़ती है हथकड़ी॥

(एक सहचर से वीर वज्राङ्ग! इस बूढ़े को पकड़ कर कारागार पहुँचाओ। हैं! तू सुनता नहीं? मेरी आज्ञा का पालन करता नहीं?

वज्राङ्ग—किया, अभी थोड़ी देर पहले आप की एक अनुचित आज्ञा का भी पालन किया। संकेत होते ही महाराज वसुदेव को पकड़ लिया। परन्तु अब यह आपकी दूसरी आज्ञा किसी प्रकार भी पालन करने योग्य नहीं है :—

जिनकी कृपा से आज मैं इतना बड़ा हुआ।
रग रग में मेरी जिनका नमक है भरा हुआ॥
आंखें दिखाऊँ उनको, तो आंखें यह, फूट जाँय।
डालूं जो उन पै हाथ तो यह हाथ टूट जाँय॥

कंस—मूर्ख है, कायर है, चाटुकार है।

वज्राङ्ग—हां, मैं मूर्ख हूं, परन्तु उस से अधिक नहीं जो अपने आप अपनी मृत्यु को अपनी ओर बुला रहा है। मैं कायर हूं, परन्तु उस से अधिक नहीं जो किसी बुरी कल्पना से भयभीत होकर अपनी बहन और बहनोई पर खड्ग चला रहा है। मैं चाटुकार हूँ, परन्तु उस से अधिक नहीं जो अपने पिता को कारागार में पहुँचाने के लिये मेरी ओर ताक रहा है—

तुम्हारा डर नहीं मुझ को, न डर मुझको जगत् का है।
मैं उसके डर से डरता हूं, जो सारे जग का कर्त्ता है॥

कंस—अच्छा, तो इस खड्ग से पहले तेरी ही खबर ली जायगी।

वज्राङ्ग—स्वीकार है, यह आज्ञा स्वीकार है, अपने राजा के लिये यह भेंट सेवक को स्वीकार है—

इस आज्ञा पै सब समय तैयार है गर्दन।
नीचे झुकी है आप पै बलिहार है गर्दन॥
मर जाना धर्म के लिये स्वीकार है मुझको।
छोड़ूं जो अपना धर्म तो धिक्कार है मुझको॥

उग्र०—सीख, सीख, अरे कुल-कलङ्क, इस छोटे से सेवक से कर्त्तव्य पालन करना सीख।

कंस—सब सीख चुका। (वज्रांग से) दुष्ट ठहर जा।

[वध करना]

वज्राङ्ग—आह ! कर्त्तव्य पूरा हुआ ।　　　　　(मृत्यु)

कंस—(चाणूर से) वीर चाणूर !

चाणूर—महाराज !

कंस—तुम और मुष्टिक इस बूढ़े को कारागार में लेजाओ ।

चाणूर—जो आज्ञा ।

[दोनों उग्रसेन को कारागार की ओर लेजाना चाहते हैं]

उग्रसेन—हाय ! ऐसे पुत्र से तो मैं बिना पुत्र का होता तभी अच्छा था—

पिता बेटे के हित को क्या न क्या करके दिखाता है ।
कलेजे का समझ टुकड़ा, सदा बलिहार जाता है ॥
खिलाता है, पिलाता है, लिखाता है, पढ़ाता है ।
लड़ाता लाड़ है सम्पत्ति का मालिक बनाता है ॥
मगर बेटे का उसके साथ क्या व्यवहार है देखो !
बुढ़ापे में पिता का इस तरह सत्कार है देखो !

कंस, तू मेरा बेटा है ?

कंस—हाँ ।

उग्रसेन—मैंने तुझे पाल पोस कर जो इतना बड़ा किया, उसका बदला तू ने आज मुझे यह दिया कि बुढ़ापे में इस प्रकार मेरा सम्मान किया ?

कंस—तुमने मुझे पाल पोस कर बड़ा किया ? ऊँह, यह तो पिता का धर्म्म है कि पुत्र का पालन करे।

उग्र०—और पुत्र का क्या धर्म है ?

कंस—यही कि पिता से अपना लालन पालन कराये।

उग्र०—और फिर बड़ा होकर पिता को आँखें दिखाय, तरह तरह के दुर्वचन सुनाय। इतना ही नहीं, पिता का अपमान कराय, पिता को मारने के लिये तैयार होजाय, उसे बन्दी कराय, उसे कारागार भिजवाय। अरे नीच, नारकी, निर्लज्ज, नराधम, नरपिशाचः—

बूढ़े पिता का शाप है तू चैन न पाये।
बदला तेरे कर्म्मों का, तेरे सामने आये॥
जिस देवकी पै आज है तू खड्ग उठाये।
सन्तान उसी की तेरा अस्तित्व मिटाये॥
परमात्मा जो पुत्र हो तो बस सुपुत्र हो।
मर जाय गर्भ ही में जो ऐसा कुपुत्र हो॥

कंस—ले जाओ।

[चाणूर और मुष्टिक उग्रसेन को ले जाते हैं]

वसुदेव—हाय ! कैसा करुणा-पूर्ण दृश्य है (कंस से) मथुरेश, हम मृत्यु की गोद में पड़े ही हुए हैं, मरने के पहले हमारी एक शङ्का निवृत्त कर दीजिये।

कंस—पूछिये।

वसुदेव—आप इतने क्रोधातुर हो रहे हैं इसका कारण क्या है ?

कंस—मुझे यह विदित हुआ है कि देवकी का आठवाँ पुत्र मेरा काल होगा।

वसुदेव—यह आपको कैसे विदित हुआ है ?

कंस—कल्पना से, किसी सूक्ष्म विचार से, या अपनी अन्तरात्मा की किसी गुप्त झनकार से।

वसुदेव—तो इसका उपाय हमें मार डालने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ? आप यदि हमें छोड़ दें, तो हम आठवां पुत्र आपकी भेंट कर देंगे।

कंस—और जो नहीं किया तो ?

वसुदेव—तो हम दोनों को मार डालना।

कंस—विश्वास नहीं है, फोड़े को पकने से पहले ही नष्ट कर देना चतुराई है, शत्रु को जीता छोड़ना बुराई है।

वसुदेव—तो शत्रु हम हैं या वह पुत्र ?

कंस—वह पुत्र।

वसुदेव—तो हम उसे आपकी भेंट करेंगे। आप आठवाँ पुत्र मांगते हैं, हम सभी पुत्र पुत्री आपकी भेंट करेंगे।

कंस—अच्छा यह स्वीकार है। परन्तु उस समय तक तुम्हें कारागार में रहना पड़ेगा। तोड़ डालो, यह कंगन तोड़ डालो, इसकी जगह अब लोहे का कड़ा हाथों में डालो :—

जहाँ मेंहदी लगी थी, अब वहाँ बेड़ी पड़ी होगी।
जहाँ अब तक बँधा कङ्कन, वहाँ अब हथकड़ी होगी॥

[सिपाही देवकी, वसुदेव को बन्दी करते हैं और परदा गिरता है]

—:—

स्थान—'यमुनातट'

[कितने ही प्रजावासियों का प्रवेश]

प्रजा० १—अब नहीं देखा जाता, दिन दिन बढ़ता हुआ कंस का अत्याचार अब नहीं देखा जाता:—

कुचल कर पुण्य को, संसार में फिर पाप छाया है ।
विकल हो ब्राह्मणों के वृन्द ने रोदन मचाया है ॥
जहाँ विनियोग का जल मन्त्र पढ़के छोड़ा जाता था ।
उसी तप-भूमि में ऋषि-रक्त दुष्टों ने बहाया है ॥

प्रजा० २—एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं, देवकी के पांच नन्हें-नन्हें बालक राक्षस की भेंट चढ़ गये। हाय! वे निर्दोष जीव, वे निष्कलङ्क प्राणी, उस अत्याचार की बढ़ती हुई ज्वाला में हवन-सामग्री की भांति स्वाहा हो गये:—

बढ़ रहा है रात दिन अन्धेर अब इस देश में ।
दीन की सुनता न कोई टेर अब इस देश में ॥

हाय सीमा हो गयी है आज अत्याचार की ।
सर उठाते हैं तो पड़ती खड्ग है सरकार की ॥

प्रजा० ३—फिर सोचा क्या है ?

प्रजा० २—वास्तव में कुछ नहीं, दासों में सोचने की शक्ति ही कहाँ ? यह कंस का शासन नहीं है, एक महावत का अंकुश है, जो प्रजा रूपी हाथी को जिधर चाहता है उधर ले जाता है । हाथी सैकड़ों अंकुशों से अधिक बोझीला होने पर भी एक, केवल एक, अंकुश के वश है ।

प्रजा० १—और इसी लिये परवश है । अन्यथाः—

अपने बल को वह याद करे तो तोड़ वहीं जंजीर धरे ।
अंकुश क्या और महावत क्या, क्षण में दुश्मन को चीर धरे ॥
पर बात है इतनी सी, वह है रहता स्वभाव गंभीर धरे ।
अंकुश की चोटें खाता है, फिर भी रहता है धीर धरे ॥

प्रजा० ४—परन्तु सदैव धीर धरे रहना भी तो कायरता है । तुम यह नहीं जानते कि अतिशय त्रास पाने पर हाथी बिगड़ता है, और जब बिगड़ता है तो पहले महावत ही से निबटता है ।

प्रजा० १—इस दृष्टान्त से तुम्हारा क्या यह अभिप्राय है कि महाराज कंस ही को समाप्त करदें ? यही न ? यह

असम्भव है । महावत के अंकुश का प्रभाव और राजा के शासन का प्रताप बड़ा बल रखता है ।

प्रजा० ३—इसीलिए मैं कहता हूं कि क्या सोचा है ?

प्रजा० २—सोचें कहां से ? मैं फिर अपनी बात दोहराऊँगा, बुद्धियां दासता के कोड़े खाते खाते शिथिल होगयी हैं । आंखें अपनी माताओं और बहनों की दुर्गति देख देख कर निर्लज्ज होगयो हैं । जिह्वायें नियमों के बन्धन में जकड़ी जाकर गूंगी होगयी हैं । हाथ अस्त्र शस्त्रों के होते हुए भी निकम्मे और कम्पायमान हो रहे हैं । और सुनोगे ? और सुनोगे ? प्रजावसियों की हृदय-फोड़ कहानी, अन्यायी कंस के अन्याय की भीषण कथा-और सुनोगे ? मत सुनो, मत सोचो, स्पष्ट बात एक है, कह दो और आज ही कह दो कि हम अन्यायी की प्रजा नहीं हैं, अन्यायी हमारा राजा नहीं है । हम धन नहीं चाहते, राज नहीं चाहते, न्याय चाहते हैं :—

रहे भोगते आज तक हम करनी के भोग ।
भूल रहे थे हड्डियों में जो था क्षय रोग ॥
आज ज्ञान हमको हुआ करते हैं प्रतिकार ।
कंसराज से अब नहीं रक्खेंगे व्यवहार ॥

प्रजा० १—तो फिर यह याद रहे कि इतने जोश के उपरान्त उपद्रव आरम्भ हो जायगा, पृथ्वी पर खून ही खून

नज़र आयगा। क्यों? इसका उत्तर क्या है? बोलो, मेरे इस प्रश्न का उत्तर क्या है।

नारद—(आकर) है, इस प्रश्न का उत्तर स्वर्ग लोक से आनेवाले इस ऋषि पर है। इस समय प्रजा की तस्वीर का एक पहलू है—आन्दोलन, और दूसरा पहलू है शान्ति। सुनो, सुनो, गुप्त शक्तियां कुछ कह रही हैं, कारागार के भीतर बलिदान होने वाली आत्माओं की कुछ पुकारें हैं। सुनो—

कष्ट कितना ही पड़े झेलना, सहना होगा।
मौन रह कर ही महायुद्ध ये करना होगा॥
शान्त होकर के तुम्हें आग पै चलना होगा।
सामने खड्ग के सीना खुला रखना होगा॥
बन के चट्टान बरफ़ की जभी पिघलोगे तुम।
बाढ़ वह आयेगी, दुनिया को डुबो दोगे तुम॥

प्रजा० १—महाराज! आप हम से शान्त रहने के लिए कह रहे हैं, यह नहीं देखते कि राक्षस के अत्याचार दिन पर दिन बढ़ते जा रहे हैं। उधर देखिये, नगर की पाठशालएँ तोड़ तोड़ कर मदिरा बनाने के कारखाने खोले जा रहे हैं।

नारद—चिन्ता नहीं, खुलने दो।

प्रजा०—इधर देखिये, गोचारण की भूमियां ग्वालों से छीन छीन कर प्रमोद-वन बनाने के काम में लायी जा रही हैं।

नारद—बनने दो, प्रमोद-वन भी बनने दो ।

प्रजा० ४—बड़े महाराज उग्रसेन और महाराज वसुदेव तथा महारार्णी देवकी का कारागार का कष्ट तो जग जाहिर है। अब प्रजा के नेता वृन्द भी बुरी तरह बन्दी-गृहों में बन्द किये जा रहे हैं।

नारद—हो जाने दो, मैं कहता हूँ कि सारे देश-वासियों को उन बन्दी-गृहों में बन्द हो जाने दो ।

प्रजा० १—फिर क्या होगा महाराज ?

नारद—फिर क्या होगा ? तुम समझते हो कि इस संसार की शक्तियां ही शक्तियां हैं, और शक्तियाँ कहीं नहीं हैं ? सातों लोकों की शक्तियां इस लोक की शक्तियों को देख रहीं हैं और क्रमशः यहां आ आकर पराजित हो रहीं हैं। जब यह शक्तियाँ क्षीण हो जायेंगी तो वह महा शक्ति जिसका नाम त्रयलोक रक्षक है, आयेगी और अपने भक्तों को बचायेगी:—

हरि ही हर सकते हैं पीड़ा, अपने साधन वे ही तो हैं ।
निर्बल के बल, निर्गुण के गुण, निर्धन के धन वे ही तो हैं ॥

प्रज० २—वे तो वैकुण्ठ में रहते हैं।

प्रजा० ३—गो-लोक में रहते हैं ।

प्रजा० ४—क्षीर-सागर में रहते हैं।

नारद—नहीं, इसी आकाश की छाया में रहते हैं, इसी पृथ्वी की गोद में रहते हैं, इसी वायु के झोकों में रहते हैं और इस यमुना की परम पावन लहरों में रहते हैं :—

जड़ में हैं और चेतन में हैं, चर में हैं और अचर में हैं ।
बादल में हैं बिजली में हैं, लकड़ी में हैं, पत्थर में हैं ॥
सर्वत्र समान जो व्यापक हैं, रहते वे सब संसार में हैं ।
फल फूल में हैं, जल वायु में हैं, इस पार में हैं, उस पार में हैं ॥

प्रजा० २—फिर वे मिलेंगे कैसे ?

नारद—कैसे मिलेंगे ? सुनोः—

अपनी तो यही धारणा है, अपनी तो बस है टेक यही ।
नारायण अपने प्रेम में हैं, हम पढ़े हैं अक्षर एक यही ॥
रहने दो और उपासन अब, प्रेमोपासन करके देखो ।
करुणानिधि से मिलना हो तो, करुणा-क्रन्दन करके देखो ॥

प्रजा० २—वह करुणाक्रन्दन किस प्रकार होगा ?

नारद—किस प्रकार होगा ? स्वयं होगा, असह्य कष्ट होने पर मनुष्य अपने आप व्याकुल हो जाता है, दुःख की घोर वेदना में आदमी अपने आप घबरा कर रोता और चिल्लाता है। पुकारो, पुकारो, दुःख है तो उसी दुःख-भंजन को प्रेम के साथ पुकारो। अभी, इसी जगह पर, करुणा के साथ, उस करुणा-निधान के नाम को उच्चारो ; आज भक्तों के वृन्द, भगवान् को

अपनी करुण-कथा नहीं सुनायेंगे। आज तो छाती तोड़ कर, गला फाड़ कर, सिर उठा कर, नाम ले ले कर उन्हें बुलायेंगे। आप भी रोयेंगे और उन्हें भी रुलायेंगे। टेरो, टेरो, हृदय खोलकर हृदयेश्वर को टेरो। दीनो, उन दीनबन्धु परमेश्वर को टेरोः—

(गायन नं० ५)

तुम्हारे होत नहीं का पीर।

हे करुणा-निधि, जगदाधारी, दुष्ट-दलन बलवीर॥
सुनते हैं जब जब भक्तों पर, पड़ती है कुछ भीर।
तब तब उनकी रक्षा को तुम, धरते मनुज शरीर॥
अविनाशी के अंश विपति में, और फिर होंय अधीर।
नहीं देखतीं क्या वे अँखियाँ, इन अँखियन के नीर॥

—o—

[सब का जाना]

स्थान—कारागार

[शैया पर देवकी का छठा पुत्र सो रहा है, देवकी उसके पास सिर झुकाये बैठी है, वसुदेव एक ओर को खड़े हुए करुणा भरी दृष्टि से उसे देख रहे हैं]

देवकी—स्वामी, अब तक पांच पुत्र हमने राक्षस की भेंट कर दिये, अब छठे की बारी है। हाय, वे मेरे नन्हे नन्हे दुलारे, वे मेरे छाती के टुकड़े और आंखों के तारे, जिन्होंने संसार-उपवन में जन्म लेकर एक दिन भी हवा न खाई, जिन्होंने माता की गोद में आकर एक समय भी दूध न पिया, ऐसे बन्द मुंह वाले, अछूते और भोले भाले, उस राक्षस ने पत्थर की चट्टान पर पटक पटक कर मार डाले:—

फूलने भी वे न पाये थे झपेटा खा गये।
ऐसे कल्ले थे जो सचमुच बिन खिले मुरझा गये॥
गोद में आने के पहले, नष्ट होते लाल हैं।
मां नहीं मरती है, बच्चे मर रहे हर साल हैं॥

वसुदेव—हाय ! ऐसा दृश्य कहीं नहीं है, ऐसा राक्षस कहीं नहीं है, तो ऐसा पिता भी कहीं नहीं है जो अपने हाथों से अपने लालों को ले जाकर उस वधिक के हाथों में दे देता है। ला देवकी, इस छठे बच्चे को भी दे दे, इसे भी उस भेड़िये के आगे डाल आऊँ।

देवकी—नहीं नाथ, इसे मैं नहीं दूँगी। मालूम होता है कि माँ बाप होकर भी हमारे हृदयों में बच्चों का मोह नहीं है।

वसुदेव—यह तू क्या कह रही है?

देवकी—ठीक कह रही हूँ, बच्चों का मोह माँ बाप को अगर होता, तो अपने हाथों से अपने पाँच पाँच लालों को उस हत्यारे के आगे न डाल देते। मोह अपने प्राणों का है जिनकी रक्षा बच्चों की बलि देकर की जाती है। हाय, यह संसार कितना स्वार्थी है?

वसुदेव—नहीं देवकी, हम इतने स्वार्थी नहीं हैं, इतने निर्मोही और निर्दयी नहीं हैं। हमारे जितने बच्चे मरे हैं उतने ही छेद हमारी छाती में हो गये हैं। परन्तु हम क्या करें, लाचार हैं, वचन दे चुके हैं, अपने वचन पर दृढ़ रहने के वास्ते तैयार हैं। संसार में दो प्रकार के मनुष्य हुआ करते हैं, एक वह जो दुःख आ पड़ने पर फूट फूटकर रोने लगते हैं और दूसरे वह जो

संकट सहते हैं, भीतर ही भीतर जलते हैं, परन्तु मुंह से आह नहीं करते हैं। हम तुम इसी श्रेणी में हैं:—

बन्दी बनें, भिखारी हुए, कष्ट उठाये।
बच्चे भी अपने काल की हैं भेंट चढ़ाये॥
पर ध्यान यह रक्खा कि वचन अपना न जाये।
कष्टों में—'हाय' मुंह से निकलने नहीं पाये॥
कुम्हलाने दो कुम्हलाये जो उद्यान ये अपना।
इतिहास को रँग डालेगा बलिदान ये अपना॥

देवकी—सत्य है नाथ, मेरी भूल थी जो मैंने अपने और आपके लिये भी स्वार्थी बनाया, भीरु ठहराया।

वसुदेव—हम यह भी तो जानते हैं कि आठवें पुत्र ही के वास्ते हमने यह जीवन धारण किया है, उसी के लिये अपने अब तक के लालों को काल के गाल में धर दिया है।

देवकी—परन्तु........

वसुदेव—हाँ हाँ—

देवकी—फिर बिना कहे नहीं रहा जाता। क्या यह क्षत्रियत्व है ?

वसुदेव—नहीं, यह क्षत्रियत्व नहीं है। हम कब कह रहे हैं कि यह क्षत्रियत्व है। क्षत्रियत्व क्या—पुरुषत्व से भी आज हम गिरे हुए हैं। अपने सामने अपने लालों को कटता हुआ देखते

हैं और मुंह से हाय तक नहीं करते। ओह! इतनी कायरता, इतनी भीरुता—पहाड़ नहीं हिलते, तारामण्डल नहीं टूटता, भूचाल नहीं आता, तूफ़ान नहीं उठता, सूर्य और चन्द्र, तुम काले क्यों नहीं पड़ जाते? वायु, तू ठहर क्यों नहीं जाती? पृथ्वी, तू रसातल में धँस क्यों नहीं जाती?-सब गूँगे हैं, सब बहरे हैं, सारा संसार मानो सोरहा है, दयानिधान की पदवी वाले ने भी कठोरता का कवच पहन लिया है। तो वसुदेव, तू भी अपनी छाती कठोर करके, हाथों को पत्थर बनाके, हत्यारे के पास ले जाने के लिये, इस छठे बच्चे को उठा—

अभागी के लड़ैते, उठ, मरण तेरा हिंडोला है।
तेरी माता शिला है अब, पिता अब तेरा बर्छा है॥

[शैय्या पर से वसुदेव बच्चे को उठाते हैं, देवकी बच्चे को अन्तिम बार देखने के लिये गोद में लेना चाहती है पर वसुदेव विलम्ब होजाने के भय से नहीं देना चाहते

देवकी—एक बार, केवल एक बार, मुंह चूम लूं।

वसुदेव—आह!

देवकी— दूध पिला दूं।

वसुदेव—ओह!

देवकी—अच्छा, ले जाओ, नहीं छुऊँगी। उधर को अपनी आँखें भी नहीं करूंगी। मैं समझूंगी कि मेरे कोई बच्चा पैदा ही नहीं हुआ। मैं निपूती हूं।

वसुदेव—हाय :—

सभी बच्चों को अपने पालते हैं, प्यार करते हैं।
हमारे सामने लेकिन, हमारे लाल मरते हैं॥
उधर माता बिलखती है, इधर यह बाप रोता है।
जुदा आंखों का तारा सामने आंखों के होता है॥

देवकी—(वसुदेव जब बच्चे सहित दरवाजे तक पहुंचते हैं तब) ठहरो, अभी ठहरो, न ले जाओ, अभी न ले जाओ, एक बार मुंह और देख लेने दो।

वसुदेव—प्रिये, अब जाने ही दो। यदि बहुत देर हो जायेगी, तो राक्षस की भृकुटी शिव का तीसरा नेत्र बन जायेगी।

देवकी—(बच्चे को छीनने की चेष्टा करती है) बन जाने दो।

वसुदेव—नहीं प्रिये, अब जाने ही दो :—

छाती, छठी लड़ाई है, फिर तू कठोर हो।
उठने दे, मोह-नद में जो उठती हिलोर हो॥
तन से हृदय को, प्यार हृदय से निकाल दे।
चल कर बधिक के सामने बच्चे को डाल दे॥

[वसुदेव बच्चे को लेकर चले जाते हैं,
देवकी मूर्च्छित होकर गिर जाती है]

—०—

'स्थान—'मार्ग'

(गायन नं० ६)

नारद—

बहुत भ्रम चुका चौरासी में, अब यह भ्रम तज मूढ़मते ।
भज नारायण, भज नारायण, नारायण भज मूढ़मते ॥
अत्याचार खलों के जब, भूमण्डल पर बढ़ जाते हैं ।
गो, द्विज और देवता दल, जब त्राहि त्राहि चिल्लाते हैं ॥
तब नरसिंह राम बनकर, जो जग में दौड़े आते हैं ।
छोड़ गरुड़ तक को आतुर हो, नङ्गे पाओं धाते हैं ॥
उन्हीं परम पुरषोत्तम के, अब गहु पद पंकज मूढ़मते ।
भज नारायण, भज नारायण, नारायण भज मूढ़मते ॥

नारायण, नारायण, नारायण। नारायण उस समय अवतार लेते हैं जब अत्याचार सीमा से बाहर होने लगता है, मनुष्य मनुष्य को खाने लगता है। यही सोचकर हम अत्याचार को असीम अत्याचार बना रहे हैं, एक बार सारे भूमण्डल को कम्पायमान करा देने की युक्ति लड़ा रहे हैं, अब भी क्या क्षीर-सिन्धु में अहला न आयेगा? अब भी क्या कमलापति का आसन डोल न जायेगा? जब भुवनेश्वर का भुवन राक्षस के अत्याचारों से रौरव नरक बन जायेगा, तो कैसे न वह स्वर्ग का स्वामी मर्त्यलोक में आयेगा। आयेगा और अवश्य आयेगा।

जब टेर त्राहि त्राहि की सब जग लगायगा।
तो क्यों न दयाधाम दया को दिखायगा?

[योगमाया का प्रवेश]

योगमाया—हाँ, हाँ, अवश्य विश्व अभी डोल जायगा।
वह विश्वनाथ दौड़ के क्षणभर में आयगा॥

नारद—पधारो योगमाये, पधारो, कहो कारागार का क्या समाचार है?

योगमाया—देवकी के पांच पुत्र राक्षस का भोजन बन गये, अब छठे को लेकर वसुदेव राज-दरबार में जारहे हैं।

नारद— अच्छा है, इस छठे को भी समाप्त होने दो।

योगमाया—परन्तु देवकी और वसुदेव को इस क्रम से बड़ा कष्ट हो रहा है।

नारद—होने दो, अत्याचार की आँधी बढ़ाना ही जब अपना लक्ष्य है तो उन्हें कष्ट होने दो, एक दिन उन्हीं के कष्ट सारे संसार को उबार देंगे।

योगमाया—परन्तु मुझे एक बात मालूम हुई है।

नारद—वह क्या ?

योगमाया—अक्रूर जी इस छठे पुत्र को नहीं मरने देंगे।

नारद—यह क्यों ?

योगमाया—यह यों कि प्रजा ने फिर आन्दोलन उठाया है।

नारद—वह क्या ?

योगमाया—यही कि यह अत्याचार रोका जाय। अक्रूर जी प्रजा के नेता हैं, इस कारण उन्हीं के द्वारा यह प्रबन्ध किया गया है कि इस छठे बच्चे को न मरने दिया जाय।

नारद—ऊँह ! एक बार पहले भी प्रजा ने ऐसा ही किया था, तब भी मैंने रेखायें खींचकर कंस को समझा दिया था। अच्छा, मैं फिर आज कंस के दरबार में जाऊँगा, कंस को भी पहले की भांति पढ़ा आऊँगा और अक्रूर जी को भी समझा आऊँगा।

योगमाया—धन्य है, धन्य है, आप बड़े लीलाधारी हैं। भगवान् जब भूतल पर आयेंगे, तो मैं तो निष्पक्ष कहदूँगी कि

उन्हें सत्यलोक से मर्त्यलोक लानेवाले तुम्हीं उन के सच्चे पुजारी हो। अच्छा तो अब मेरे लिये क्या आज्ञा है?

नारद—तुम भविष्य के कार्य्य-क्रम पर अपनी दृष्टि रक्खो। भूल गई हो तो फिर स्मरण कर लो।

योगमाया—नहीं, भूलूंगी कैसे, सातवें गर्भ में भगवान् शेष जी आयेंगे, उन्हें देवकी के उदर से लेजाकर गोकुल में रहने वाली, वसुदेव की दूसरी नारी महाराणी रोहिणी के उदर में पहुँचाना होगा, और देवकी का सातवाँ गर्भ नष्ट हो गया, इस खबर को मथुरा नगरी में फैलाना होगा।

नारद—ठीक, इसके बाद?

योगमाया—इसके बाद मुझे स्वयं कन्या बनकर यशोदा मैया के यहां जन्म लेना होगा, भगवान् जब कारागार में अवतीर्ण होजायेंगे और महाराज वसुदेव उन्हें यशोदा मैया के पास पहुंचा आयेंगे तथा बदले में मुझे ले आयेंगे, तब कंस के द्वारा शिला पर गिर कर आकाश में उड़ना होगा, और भगवान् के प्रकट हो जाने का समाचार देना होगा।

नारद—ठीक, तुमने अपना पाठ इस तरह याद कर रक्खा है जैसे रट लिया हो!

योगमाया—क्यों न इस तरह याद कर रखती, आप यदि महाऋषि हैं तो मैं भी तो योगमाया हूं। अच्छा एक बात बताओ।

नारद—पूछो।

योगमाया—यह भी आपने सोचा है कि देवकी के आठवें पुत्र बनकर भगवान यदि इस लोक में न आयें तो?

नारद—कैसे न आयें? प्रकृति के नियम न बिगड़ जायें, भक्त न रूठ जायें। हम यदि उनके आज्ञाकारी सेवक हैं, तो वे भी हमारी हठ रखने वाले हमारे स्वामी हैं। योगमाया:—

गुत्थियाँ हैं यह विश्वास की, इनको विश्वासी ही जानते हैं।
दासों की गुप्त ये अरदासें, घट घट वासी ही जानते हैं॥

योगमाया—अच्छा तो अब मेरी नौकरी?

नारद—कारागार में वसुदेव देवकी की रक्षा करना।

योगमाया—और आपका कर्त्तव्य?

नारद—कंस के अत्याचारों को और भी उत्तेजित कर देना।

(जाना)

योगमाया—पधारो, पधारो, सच्चिदानन्द! अब बहुत समय नहीं है, शीघ्र इस भूमण्डल पर पधारो, और अपने प्यारे भक्तों को महा कष्टों से उबारो:—

(गायन नं० ७)

नाथ, फिर डूबते भारत को बचाने आओ।
नाव मँझधार में है, पार लगाने आओ॥
प्यार जिस भूमि से गोलोक में भी रखते हो।
आज उस भूमि की विपदा को मिटाने आओ॥
जिन जनों के लिये तुम, अपना कहा करते हो।
फन्द उन अपनों के गोविन्द छुड़ाने आओ॥
हैं जो अज्ञान अँधेरे में भटकते फिरते।
ज्ञान दीपक से उन्हें, राह दिखाने आओ॥
कर्म्मयोगी बनें और, धर्म के फिर वीर बनें।
देश वालों को यह उपदेश सुनाने आओ॥
मृत्यु के ग्राह ने है, देश के गज को पकड़ा।
फिर गरुड छोड़ के निज जनको जिलाने आओ॥
अपने ही घर में लड़ा करते हैं जो "राधेश्याम"।
उन्हीं घर वालों को फिर प्रेम सिखाने आओ॥

—o—
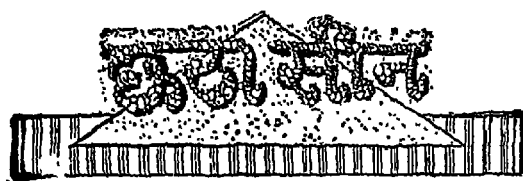
(कंस का दरबार)

[दर्बारी आते हैं, फिर अक्रूर जी आते हैं, तदुपरान्त मुष्टिक आदि के साथ कंस आकर सिंहासन पर बैठता है]

(गायन नं० ८)

गायिकायें—

आहा री फूलों वाली, ओहो री फूलों वाली ।
चुनचुन के रंग बिरंगे, फूलोंकी डाली, लाई है फूलोंवाली॥
गेंदा, गुलाब, मोतिया, जुही, गुलमेंहदी, गुलाबांस, गुलनार
दाऊदी, दुपहरिया, मरवा, केतकी, हज़ारा, हारसिंगार ॥
मालती, माधवी, जवा, झिल्ली, केवड़ा, मोगरा, पपी, अनार।
कलगा, पनसुतिया, मौलसिरी, कनैल, कामिनी, सदाबहार॥

कंस—क्यों वीर मुष्टिक, प्रजा का क्या हाल है ?

मुष्टिक—राजेन्द्र, घर घर आपकी जय के डङ्के बज रहे हैं।

कंस—इस से तो मालूम होता है कि लोग मेरा शासन मानते हैं।

मुष्टिक—मानना क्या, वे तो आपके सिंहासन को इन्द्रासन से भी ऊँचा समझते हैं।

अक्रूर—सच्चाई को न छिपाओ मुष्टिक।

मुष्टिक—अक्रूर जी, क्या मैं झूठे समाचार सुना रहा हूँ ?

अक्रूर—निःसन्देह, आज छै सात वर्ष से बड़े महाराज और वसुदेव देवकी को कारागार में जो कष्ट पहुंचाया जा रहा है उसके कारण प्रजा के नेताओं में घोर आन्दोलन हो रहा है। बच्चा बच्चा त्राहि त्राहि कर रहा है।

मुष्टिक—ओह, हमने इन सब नेताओं को भी कारागार में ठूंस दिया है।

अक्रूर—यह और भी जलती ज्वाला में घी गिरा है:—

जिनके बल से देश में, था सद्भाव सुकाल।
काल कोठरी में पड़े, वे भारत के लाल॥

कंस—तो क्या हुआ, जो हमारे शासन को नहीं मानेंगे उनका स्थान काल कोठरी ही होगी।

अक्रूर—आपके शासन को या आपके अत्याचार को ? आप के शासन को लोग मानने के लिए तैयार हैं परन्तु आपके अत्याचार को मानने के लिए तैयार नहीं हैं ?

कंस—ता क्या हम अत्याचार करते है ?

अक्रूर—अवश्य, हाय आज गर्भवती देवकी कारागार के जंगले के भीतर चारपाई पर भी नहीं, पृथ्वी पर पड़ी कराहा करती है। राजपुत्र वसुदेव दो फटे पुराने कम्बलों में अपना दिन काटा करते हैं। प्रजा के और नेता जो इस अपराध पर वहां भेजे गये हैं कि उन्होंने वसुदेव देवकी का पक्ष लिया था, बड़ी हो दुर्दशा मे हैं। कोड़ों की मार वे खाते हैं, भेड़ बकरियों की तरह छोटी छोटी कोठरियों में वे भरे जाते हैं। जब इतना अत्याचार है तो ब्रजधाम ही नहीं सारा भारतवर्ष किसी दिन काँप जायगा :—

राजसी भोजन के भोजी, कर रहे उपवास हैं।
शाक भाजी की जगह मिलती उन्हें अब घास हैं॥
लात घूँसे ही नहीं डण्डों का सहते त्रास हैं।
मोल ले रक्खा हो मानों, इस तरह के दास हैं॥
हैं न कारागार में रौरव नरक में बन्द हैं।
धर्म्म पै आरूढ़ हैं सच्चाई के पाबन्द हैं।

कंस—क्यों मुष्टिक, अक्रूर जी जो कह रहे हैं वह कहां तक ठीक है ?

मुष्टिक—महाराज, देवकी को अवश्य शैय्या का कष्ट था, उसका प्रबन्ध कर दिया गया। और वसुदेव के वस्त्रों में भी सुधार कर देने का हुक्म देदिया गया।

कंस—दूसरे लोगों के लिये ?

मुष्टिक—उन्हें तो इससे भी अधिक कष्ट दिया जाय तो अच्छा है महाराज, कारण वे लोग शान्ति के नाशक हैं, उद्दण्ड हैं, निरङ्कुश हैं और अराजक हैं।

कंस—ठीक है, ठीक है, तुम जो कह रहे हो वह बिल्कुल ही ठीक है—

[चाणूर का प्रवेश]

चाणूर—मथुरेश की जय हो।

कंस—आओ चाणूर. क्या समाचार है ?

चाणूर—महाराज, छठा पुत्र लेकर वसुदेव हाजिर हैं।

[वसुदेव का आना]

वसुदेव—कंसराज, लो-यह छठा बेटा है, जिसको यह वसुदेव अपनी प्रतिज्ञानुसार आपकी सेवा में लेकर उपस्थित हुआ है।

भोजन है यह काल का, या है वीर-विनोद।
जो हो, देखी है नहीं इसने माँ की गोद॥

कंस—ओह, चाणूर, इस बच्चे को भी मार दो, गला घोंट कर किसी गढ़े में फेंक दो।

चाणूर—जो आज्ञा महाराज।

[बच्चे को मारना चाहता है, अक्रूर जी रोकते हैं]

अक्रूर—ठहरो चाणूर, इस बालक को मुझे दे दो।

कंस—तुम इसका क्या करोगे अक्रूर ?

अक्रूर—मैं उसका क्या करूँगा ? वही करूँगा जो किसी अनाथ बालक के लिए एक सज्जन हृदय किया करता है। वही करूँगा जो एक गाय के बछड़े के लिए एक गो-भक्त ब्राह्मण किया करता है।

कंस—अर्थात् ?

अक्रूर—मैं इसे पालूंगा, मैं इसे जीवित रक्खूंगा।

वसुदेव—आह ! अब तक मैं समझता था कि बाप ही के हृदय में बच्चे का प्यार होता है, पर नहीं, औरों को भी वह प्यारा लगता है।

कंस—पर यह तो मेरा भोजन है अक्रूर। अब तक मैंने अपना सम्बन्धी समझ कर तुम से कुछ नहीं कहा, परन्तु अब मैं देखता हूँ कि तुम अपनी सीमा छोड़ रहे हो।

अक्रूर—और मैं भी देखता हूं कि तुम हद से ज्यादा बढ़ रहे हो।

कंस—यह कैसे ?

अक्रूर—यह ऐसे कि देवकी का आठवां बालक तुम्हारे क्रोध की सामग्री है, परन्तु तुमने तो अब तक पाँच बालक मार डाले और अब इस छठे को भी मार रहे हो—

खोल कर आंखों को देखो ये अबोध अजान है ।
कुछ नहीं इसको अभी अच्छे बुरे का ज्ञान है ॥
मांस का एक लोथड़ा है, ये खिला एक फूल है ।
इसका वध अन्याय है, अपराध है और भूल है ॥

वसुदेव—(स्वगत) आह ! कंसराज तुम अक्रूर होते, और अक्रूर तुम्हारी जगह होता, तो अच्छा था ।

कंस—अक्रूर, पिछले बालकों के वध करने के समय भी तुमने इसी तरह विरोध किया था । बार बार तुम्हारा विरोध करना अच्छा नहीं ।

अक्रूर—कंसराज, मैं भी कहता हूं कि प्रत्येक बालक पर तुम्हारा क्रोध करना अच्छा नहीं —

कर सके अपनी न जो रक्षा कभी—
मारते उसको नहीं योद्धा कभी ।
बालहत्या, पापियों का कर्म है—
शूरवीरों का नहीं यह धर्म है ।

कंस—मैं पापी हूं ? अक्रूर मुंह सँभालो।

अक्रूर—हाँ, तुम उल्टे मार्ग पर जा रहे हो। राजन्, अपने शासन की बागडोर सँभालो। यह बच्चा, यह नन्हा सा बच्चा, कोई इसकी मां से जाकर पूछे, कौन है! कोई इसके बाप के हृदय में जाकर देखे, कौन है! क्षमा, क्षमा, मथुरापति, मैं कहता हूँ कि इसके मां बाप की तरफ़ नहीं, तो इसकी तरफ़ देखकर इसे क्षमा करो। मेरी तरफ़ नहीं, अपनी तरफ़ नहीं, तो परमात्मा की तरफ़ देखकर इसे क्षमा करो :—

अपनी न्योछावर समझ मुझको ये बच्चा दीजिये।
दुधमुंहे के प्राण की महाराज, भिक्षा दीजिये॥

कंस—अक्रूर, मैं पागल होजाऊँगा। कई बरस पहले तुम्हीं ने मुझ से हठ करके वसुदेव और देवकी को कारागार से मुक्त कराया। परन्तु नारद जी के समझाने पर मैंने उनको फिर बन्दीगृह में डाल दिया। अच्छा, तुम्हारे आग्रह से इस छठे बालक को आज मैं छोड़ता हूं। (चाणूर से) चाणूर, यह बालक नहीं मारा जायगा।

नारद—(आकर) नहीं मारा जायगा ? नहीं, मारा जायगा।

अक्रूर—हैं, मारा जायगा ? नारद जी, आप यह क्या कह रहे है ?

नारद—ठीक कह रहे हैं, इधर आइये, हम आपको समझावें (धीरे धीरे) भगवान् सात लोकों से अपनी सात शक्तियों को पहले भेजेंगे, तब आठवीं बार स्वयं आयेंगे, पांच लोकों की शक्तियाँ समाप्त होचुकीं, यह छठे लोक की शक्ति है, इसे भी समाप्त होने दो, जिससे कि वे आठवें लोक वाले, गो-द्विज-हितकारी, भू-भार-हारी पूर्ण पुरुषोत्तम अत्यन्त शीघ्र इस लोक में आजायें।

अक्रूर—परन्तु इन बालकों के नष्ट होने से देवकी को बड़ा क्लेश हो रहा है।

नारद—

होने दो यदि देवकी को होता है क्लेश।
बढ़ें क्लेश ही विश्व में, यह है अब उद्देश॥

कंस—नारद जी महाराज, अक्रूर को आप जो बात समझा रहे हैं वह प्रकट ही में, सबके सामने, क्यों न समझाइये? इस गुप्त भाषण को हटाइये।

नारद—वही करता हूँ राजन्। एक बार तुम्हें पहले भी समझा चुका हूं। आज फिर वही बात जरा विस्तार पूर्वक समझाता हूँ। लो, इस कमल के फूल को देखो, बताओ, इस में कितनी पंखुड़ी हैं?

कंस—एक, दो, तीन, चार, पाँच, छै, सात, आठ-आठ हैं।

नारद—पहली पंखुड़ी कौन सी है और आठवीं कौन सी है ?

कंस—सभी पहली हैं और सभी आठवीं।

नारद—तो बस, अष्टदल कमल की पंखुड़ियों की तरह पहला बालक भी आठवाँ हो सकता है और आठवाँ भी आठवां।

कंस—और दूसरा; तीसरा, चौथा, पांचवां, छठा आदि ?

नारद—वह भी सब आठवें हो सकते हैं-समझ गये राजन् ? समझ गये अक्रूर !

वसुदेव—सब समझ गये, पर वसुदेव नहीं समझा हाय ! बाप के हृदय, तू क्यों नहीं समझता ?

कंस—निश्चित होगया। आठों बालक वध करने चाहिये। लाओ चाणूर, इस बालक को मेरे पास लाओ। मैं इसी समय अपनी इस खड्ग की नोक से इसे समाप्त करूँगा :—

देख लूंगा अब कहां बचता है मेरे जाल से।
खींच लाऊँगा पकड़ आकाश से पाताल से॥

काल किसका—मैं स्वयं ही काल का अवतंस हूँ।

शत्रुओं का वंशहारी ध्वंसकारी कंस हूँ॥

(कंस बालक की छाती खड्ग से चीर डालता है)

वसुदेव—आह !…………

—०—

"मार्ग"

[महामाया का प्रवेश]

(गायन नं० ६)

महामाया—

धरिणी पर अत्याचार जभी होता है।
धरिणीधर का अवतार तभी होता है॥
जब उचित मार्ग से जनता हट जाती है।
जब न्याय नीति की महिमा घट जाती है॥
मर्यादा जब सब उलट—पुलट जाती है।
जब सत्य सनातन की जड़ कट जाती है॥
जब धर्म—भ्रष्ट संसार सभी होता है।
धरिणीधर का अवतार तभी होता है॥

—०—

होगया, देवर्षि नारद जी की बताई हुई युक्ति के अनुसार माता रोहिणी के महल में बलराम के नाम से शेषावतार वाली सातवीं शक्ति का जन्म होगया। अब आठवीं शक्ति के नाम से स्वयं भगवान् अवतीर्ण होने वाले हैं। कंस के कारागार, तेरा मान आज गोलोक से भी बढ़कर है; क्योंकि तेरी भूमि पर स्वयं भूमि-भार-हारी, गोलोक-विहारी, मङ्गलकारी, जगदाधारी आने वाले हैं। जिस कारागार को प्राणी बुरा समझते हैं, जिस कारागार के नाम से संसार के जीवमात्र भयभीत रहते हैं, उसी कारागार में, आज संसार के कारागार के स्वामी जन्म लेने वाले हैं। कैसी अनोखी लीला है! लोग कहते हैं-मनुष्यों में भगवान् कैसे आ जायेंगे? मैं कहती हूं-उसी तरह, जिस तरह क़ैदख़ाने में क़ैदियों को देखने के लिये क़ैदख़ाने का निरीक्षक आता है। क़ैदख़ाने में क़ैदी और निरीक्षक दोनों ही किसी किसी समय इकट्ठे हो जाते हैं, परन्तु क़ैदी क़ैदी और निरीक्षक निरीक्षक कहलाता है।

जाओ, जाओ, स्वर्ग के देवी और देवताओ, तुम सब गोपी और गोप बनकर गोकुल में पहुँच जाओ, भगवान् का अवतार होनेवाला है। स्वर्ग के अमृत, तू आज से यमुना के जल में निवास को प्राप्त हो। स्वर्ग के कल्प-वृक्ष, तू अब से कदम्ब के वृक्ष में विराजमान हो। स्वर्ग के रत्न समूह, तुम्हें अब

से ब्रज-रज में विलीन हो जाना चाहिये, भगवान् इस ब्रजभूमि पर आरहे हैं :—

स्वर्ग से भी बढ़ के यह ब्रजधाम अब कहलायगा ।
स्वर्गवासी बन के ब्रजवासी यहाँ पर आयगा ॥
कोई तोलेगा तराजू में जो ब्रज और स्वर्ग को ।
भूमि पे भारी रहेगा, नभ पे हलका जायगा ॥

(गायन नं० १०)

भाग्य फिर सोते हुए भारत का जगजाने को है ।
फिर इसी की गोद में वह विश्वपति आने को है ॥
जिस के उत्तर में हिमालय, और दक्षिण में है सिन्धु ।
शक्ति दुनिया के लिए वह देश दिखलाने को है ॥
कष्ट का आगार कहलाता है कारागार जो ।
अब से करुणागार का मन्दिर वह कहलाने को है ॥
फैलता है पूर्व से रवि-तेज हे रजनीचरो ।
अब तुम्हें मारग न अत्याचार फैलाने को है ॥

चल चुकी आंधी बहुत उत्पात की और त्रास की।
मेंह अब आनंद का गोविन्द बरसाने को है॥
जिस अमरदल ने अवध में दी बधाई "राधेश्याम"।
वह ही स्वागत गान फिर ब्रजधाम में गाने को है॥

[आना]

—०—
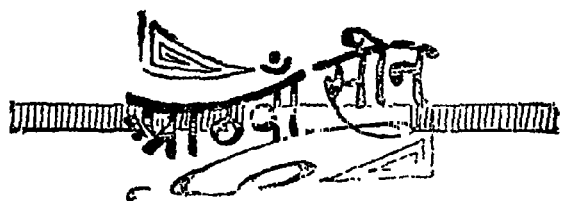
कारागार

(गायन नं० ११)

देवकी—

निर्बल के प्राण पुकार रहे, जगदीश हरे जगदीश हरे ।
श्वासों के स्वर झनकार रहे, जगदीश हरे जगदीश हरे ॥
आकाश हिमालय सागर में, पृथ्वी पाताल चराचर में ।
यह मधुर बोल गुञ्जार रहे, जगदीश हरे जगदीश हरे ॥
जब दया-दृष्टि होजाती है, जलती खेती हरियाती है ।
इस आश पै जन उच्चार रहे, जगदीश हरे जगदीश हरे ॥
सुख दुःखों की चिन्ता है नहीं, भय है विश्वास न जाय कहीं
टूटे न, लगा यह तार रहे, जगदीश हरे जगदीश हरे ॥

—०—

(देवकी शैय्या पर सो जाती है, भगवान् चतुर्भुजी मूर्ति में उसे दिखाई देते हैं, तदुपरान्त बालक बनकर शैय्या पर लेट जाते हैं, देवकी चौंक कर उठती हैं)

देवकी—स्वामी ! स्वामी !!

वसुदेव—प्रिये ! प्रिये !! क्यों क्या हाल है ?

देवकी—समय क्या होगा ?

वसुदेव—अभी बारह का घंटा पहरेदारों ने बजाया है।

देवकी—आप कहां थे ?

वसुदेव—अभी थोड़ी देर पहले तो तुम्हारे पास ही बैठा हुआ था।

देवकी—फिर चले कहां गये थे ?

वसुदेव—मुझे ऐसा मालूम हुआ कि कोई मनुष्य मुझे बुला रहा है। दर्वाजे तक पहुंचा तो देखा कोई नहीं है। आकाश पर दृष्टि गई तो देखा-काले काले बादल छाये हैं, पर वे भयानक नहीं हैं। अचानक बादलों में एक प्रकाश देखा-उस प्रकाश में एक दिव्य मूर्त्ति देखी-जैसी आज तक नहीं देखी थी देवकी !

देवकी—फिर क्या हुआ ?

वसुदेव—सहसा वह मूर्त्ति मेरे समीप आगयी। मैंने चाहा कि उसे हृदय से लगा लूं। परन्तु वह मुझे स्नेह की दृष्टि से देखती हुई तुम्हारे पास को आने लगी। मैं प्रेम की मीठी मीठी

नींद में सो सा गया। इतने में वंशी की आवाज सुनाई दी। चौंक कर उठा तो देखा—कुछ नहीं है, तुम मुझे पुकार रही हो। क्या यहां कोई आया था ?

देवकी—नाथ ! आपने जिसे देखा था वह मूर्ति कैसी थी ?

वसुदेव—कैसी थी ? यह न पूछो। उसका वर्णन करना कल्पना से बाहर है, विचार से तीत है। वहाँ वाणी का गम नहीं। वह लेखनी का विषय नहीं। देवकी ! देवकी !! कविता, चित्रकारी और संगीत यह तीनों वस्तुएँ मानो सजीव मेरे सामने थीं। इन तीनों वस्तुओं से बनी हुई एक अद्भुत, अपूर्व और अलौकिक मूर्ति मेरी आंखों के आगे खड़ी हुई थी। जिसमें तीनों लोकों का माधुर्य, सौन्दर्य और आनन्द समाया हुआ था। क्या बताऊँ देवकी :—

नील कमल सा सुघर सलोना श्याम वदन था।
कृष्णा रैन में चन्द्र सरीखा प्रिय दर्शन था॥
तन पर मणि से जटित सुसज्जित स्वच्छ वसन था।
तारागण से लसित प्रफुल्लित मनो गगन था॥
मोर मुकुट था शीस पर, गल वैजन्ती माल थी।
विश्व जीतने के लिये प्रकटी मूर्ति रसाल थी॥

देवकी—(अर्द्ध स्वगत) तो आपने भी अवश्य उन्हीं को देखा।

वसुदेव—किन को ?

देवकी—(शैय्या पर सोते हुए बालक को दिखाकर) इनको, भगवान् को, जिनके कारण आज तक अनेक कष्ट सहे हैं—उन करुणानिधान को ।

वसुदेव—तो क्या आठवें बालक का जन्म होगया ?

देवकी—हां, होगया । बालक मत कहो—त्रिलोकीनाथ का जन्म होगया ।

वसुदेव—परन्तुः—

देवकी—हां, हां, बड़ी शान्ति के साथ जन्म हुआ । संसार की किसी माता के यहां इतनी शान्ति, और इतने अद्भुत ढंग से किसी पुत्र का जन्म नहीं हुआ होगा । आप अपनी कह चुके, अब मेरी सुनिये—मैं सो रही थी, नहीं—जाग सी रही थी, स्वप्न नहीं था, जाग्रत—अवस्था सी थी—यह भादों बदी अष्टमी, दीपावली की रात्रि से ज्यादा रूपवान्, शिवरात्रि से ज्यादा शान्तिवान् और होली की रात्रि से ज्यादा तेजवान् मुझे मालूम हुई । मैंने देखा सारा संसार एक गेंद की तरह है । उस गेंद के ऊपर एक छोटा सा बालक खेल रहा है । धीरे धीरे वह बालक बड़ा हुआ । ज्यों ज्यों वह बालक बड़ा होता गया, त्यों त्यों गेंद छोटी होती गयी । अन्त में गेंद नहीं रही, बालक की बड़ी सी मूर्ति रह गयी ।

वसुदेव—वह मूर्ति कैसी थी ?

देवकी—आपने जैसी देखी थी–उससे कितने ही अंशों में बढ़ी चढ़ी हुई। मैंने जिस मूर्ति को देखा था–उसकी चार भुजायें थीं, और वे चारों भुजायें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म से शोभायमान् थीं। मालूम होता था–मानों चारों दिशाओं पर जय प्राप्त करने के लिये वह मूर्ति उदय हुई है, प्रेम, करुणा, वीरता और उदारता की दृष्टि से चारों ओर देख रही है:—

महिमा-मय, मंगल-मोद-मयी, मृदु मूर्ति, मधुर, मन मोहन थी।
अति ओज भरी, अति तेज भरी, अघ-ओघ अमोघ विमोचन थी॥
भव-ताप-कलाप-विभञ्जन थी, खल-गञ्जन थी, जन-रञ्जन थी।
तन की, मन की, धन,जीवन की, जीवन-धन थी, सञ्जीवन थी॥
कुछ याद नहीं, कुछ ध्यान नहीं, कैसे वात्सल्य नवीन हुआ।
उस रूप में मैं ही लीन हुई, या वह ही मुझ में लीन हुआ॥

वसुदेव—फिर क्या हुआ ?

देवकी—बड़ी देर तक शङ्ख, मृदङ्ग, घण्टे और घड़ियाल बजते रहे।

वसुदेव—फिर ?

देवकी—फिर आकाश से पुष्प-वृष्टि हुई।

वसुदेव—फिर ?

देवकी—फिर वही मूर्ति धीरे धीरे बालक हो गई और मेरी शैय्या पर लेट गई।

वसुदेव—बस, बस, तब तो हमारे भाग जाग गये (बालक को देख कर) जय जय त्रिलोकीनाथ की जय।

आकाशवाणी—पिताजी, यह समय ज्यादा लाड़ चाव का नहीं है! जाइये मुझे गोकुल में यशोदा मैया के पास पहुंचा आइये और वहाँ कन्या के रूप में मेरी माया अवतरी है उसे यहाँ ले आइये।

वसुदेव—देवकी! तुमने कुछ सुना?

देवकी—हां, जो आपने सुना वही मैंने सुना। आकाशवाणी हो रही है कि-"इस बालक को गोकुल में यशोदाजी के पास पहुँचा आओ और वहां एक कन्या जन्मी है उसे यहां लेआओ"। परन्तु-प्राणनाथ!

वसुदेव—हाँ कहो।

देवकी—मैं बड़ी अभागिनी हूँ। सात बालक इस प्रकार मुझ से अलग होगये और यह आठवें प्रभु अब इस प्रकार बिछुड़ने वाले हैं। नहीं, नहीं, मैं अपनी आंखों से किसी प्रकार इन्हें दूर न होने दूँगी। माता अपने इस लाल को अपनी गोद से किसी प्रकार बाहर नहीं होने देगी। आने दो, कंस को आने दो, मैं उसके आगे गिड़गिड़ाऊंगी; दोनों हाथ बढ़ाकर, आंचल फैलाकर, इस बालक

के प्राणों की भिक्षा उस से माँग लूंगी। आखिर तो वह मेरा भाई है। क्या मुझे इतनी भीख न देगा ?

माना वह नीच नराधम है, निष्ठुर, निर्दय, उत्पाती है ।
है वज्र समान हृदय उसका, पत्थर सी उसकी छाती है ॥
पर मैं करुणा-क्रन्दन करके, करुणा उसमें उपजाऊँगी ।
अपने इस बेटे की खातिर उसके पग पर गिरजाऊँगी ॥

वसुदेव—ऐसी बातों से यहाँ काम नहीं चलता है। जल की धाराओं से लोहा नहीं गलता है ?

देवकी—तो फिर जिनकी खातिर अब तक जी रही थी, उनको इस संसार के हाथों सौंप कर—राक्षस की खड्ग के नीचे—मैं अपने जीवन को विसर्जन कर डालूंगा:—

आज तक बच्चे हुए बलिदान मेरे वास्ते ।
आज मैं बलिदान होजाऊँगी इनके वास्ते ॥

वसुदेव—फिर इससे क्या होगा ? राक्षस का हनन हो जायगा ? संसार में शान्ति का स्थापन होजायगा ?

देवकी—मुझे संसार से क्या प्रयोजन ? मुझे तो अपने लाल से प्रयोजन है। किसी माता से जाकर पूछो कि उसकी गोदी का लाल उसका कितना बड़ा धन है। वह उसको सारे संसार से अधिक मूल्यवान् समझती है। अपने उस रत्न पर वह तीनों लोकों की महान् सम्पदा को वार देती है:—

तुम स्वामी हो मैं दासी हूँ, जो आज्ञा दोगे पालूंगी ।
माँगोगे तो परवश होकर, यह बच्चा भी दे डालूंगी ॥
पर यह जतलाये देती हूं, पीड़ा न सहन हो पायेगी ।
छाती का टुकड़ा जाते ही, छाती टुकड़े हो जायेगी ॥

वसुदेव—परन्तु प्रिये, और बच्चों की तरह इन प्रभु को मैं राक्षस के पास थोड़े ही ले जा रहा हूँ, इन्हें तो मैं-इन्हीं की इच्छानुसार-कुछ दिनों के वास्ते-तुम्हारी गोद से अलग कर रहा हूं। (फाटक खुलने की आवाज़ सुनकर) लो देखो, फिर ईश्वरीय सङ्केत हुआ। फाटक अपने आप खुल गया। पहरेदार भी सोते हुए दिखाई दे रहे हैं। मेरे बन्धन तो इससे पहले ही खुल चुके हैं। अब विलम्ब न करो, मुझे इन महाप्रभु को लेकर गोकुल जाने ही दो।

देवकी—नहीं मानोगे ?

वसुदेव—हाँ, भगवान् की ऐसी ही आज्ञा है।

देवकी—इन्हें ले ही जाओगे ?

वसुदेव—हां, होतव्य यही कहता है।

नारद—(प्रवेश करके) और सारा संसार भी यह चाहता है। क्षत्राणी माता, पृथ्वी का भार हरण करने के लिये-पृथ्वी का एक एक परमाणु-इस बालक को तुम से मांग रहा है। सहन करो। देवकी माता, जिस प्रकार अब तक-इतने वर्षों तक-इनके

मुख दर्शन की लालसा में—तुमने अनेकों पीड़ाएँ और यातनाएँ सहन की हैं, उसी प्रकार कुछ काल तक इनका वियोग और सहन करो। तुम वीर बाला हो—यह अन्तिम कष्ट और बर्दाश्त करो। यह आयेंगे—किसी दिन फिर तुम्हारे पास आयेंगे। और फिर जब तुम्हारे पास आयेंगे तो तुम्हारे जीवन भर तुम्हारे पास से नहीं जायेंगे:—

समय पड़े पर चूकना, नहीं चतुर का कर्म।
समय समय पर चाहिए, समय समय का धर्म॥

देवकी—(बालक को उठाकर) अच्छा, जाओ प्रभु, जाओ। पति की आज्ञा है, देवर्षि की आज्ञा है, तो बहन यशोदा की गोद में पलने के लिए—मेरी गोद के लाल जाओ। मुझ से अधिक यशोदा तुम्हें प्यार करे, मुझ से अधिक यशोदा तुम्हारे प्यार की माता बने:—

(गायन नं० १२)

नहीं पी सके तुम अगर इस मैया का दूध।
गोकुल में चिन्ता नहीं है गैया का दूध॥
सिधारो—लाल प्यारे, उजियारे।
नैन तारे, नेह वारे, प्राण प्यारे॥

रोका बहुतेरा हृदय अब नहीं रोका जाय ।
बछड़ा बिछड़े तो भला क्यों न गाय डकराय ॥
सिधारो—लाल प्यारे, उजियारे ।
नैन तारे, नेह वारे, प्राण प्यारे ॥

—o—

ले जाओ नाथ !

(देवकी वसुदेव की गोद में भगवान् कृष्ण को देती है)

नारद—धन्य; आदर्श माता तुम्हें और तुम्हारी उस सहन शक्ति को आज लाख लाख बार धन्य है ।

देवकी—ले जाओ नाथ, अब विलम्ब न करो । वह पापी आता होगा । इन्हें जल्दी ले जाओ । परन्तु ठहरो, इनको प्रधान छवि इस हृदय में रक्खूंगी, और उस छवि की छाया को तुम्हारे साथ गोकुल भेजूंगी ।

नारद—शान्त, माता ।

वसुदेव—प्रिये, विदा ।

देवकी—क्या मेरा लाल गोकुल चला ?

(पृथ्वी पर मूर्छित हो जाती है)

वसुदेव—हाय !

एक वह छाती है जो अकुला रही है लाल को ।
एक यह छाती है जो ले जारही है लाल को ॥

नारद—जाइये महाराज। आप इन्हें लेजाइये। मैं माता को समझा लूंगा। आपके आने तक इनकी रक्षा करूंगा।

वसुदेव—(बालक से)

हम बन्धन में सही, तुम हो जाओ स्वच्छन्द।
चलो नन्द के घर करो गोकुल में आनन्द॥

[प्रस्थान]

नारद—(देवकी को जगाकर) माता!

देवकी—(उठकर) कौन? चला गया बेटा? मेरा बेटा चला गया? वह त्रिलोकी का राजा चला गया? वह इस मैया के स्नेह-गगन का चन्दा चला गया?

ये सपना था, अचम्भा था, अँधेरी थी या उजियाली।
अभी गोदी में आया था, अभी गोदी हुई खाली!
जगत के रहने वालो, तुमने माता ऐसी देखी है?
जो माता भी कहाती है, जो बच्चा भी न रखती है!

नारद—माता, शान्त हो।

देवकी—आप क्या कह रहे हैं देवर्षि? माता की सब से बड़ी सम्पत्ति उसकी गोदी से चला जाय और वह शान्त रहे? यह असम्भव है।

नारद—कौन चला गया और कहां चला गया? न कोई कहां से आया था और न कोई कहीं गया, तुम बड़भागिनी हो

जो त्रिलोकीनाथं तुम्हारे यहां अवतरे हैं। साकार रूप वाले नारायण इस समय गोकुल में गये हैं, परन्तु निराकार रूप वाले भगवान् वहां भी मौजूद हैं और यहां भी प्रत्यक्ष होरहे हैं। तुम में और मुझ में जो चैतन्य सत्ता है वह उन्हीं की तो है। इस पृथ्वी में, इस आकाश में जो रूप और नाम की भ्रान्ति है, उसके पर्दे में वे ही तो हैं। भगवान् जगदीश हैं और तुम जगदीश की जननी हो। जगदीश की जननी होकर इतनी मोह लीला तुम्हें शोभा नहीं देती :—

ही बड़भागिनि कि बालक रूप में भगवान् पाये हैं।
तुम्हारे हैं, तुम्हारे ही लिये पृथ्वी पै आये हैं॥
जहां भी वे रहेंगे देवकी—नन्दन कहायेंगे।
तुम्हारे नाम से संसार के संकट मिटायेंगे॥

देवकी—अच्छा, अभी वे यशोदा के पास पहुँचे या नहीं ?

नारद—अब पहुँचने ही वाले हैं, महाराज वसुदेव के शरीर में इस समय महामाया का बल काम कर रहा है। मार्ग अत्यन्त सुगम होरहा है।

देवकी—इस समय वे कहां हैं ?

नारद—यमुना में। मैं अपने योगबल से बताता हूं—यमुना में। यमुना चढ़ रही है, भगवान् के चरणारविन्द का स्पर्श करके

थाही होजायगी। उस पार पहुँचते ही यशोदा की अटारी में तुम्हारी सम्पदा पहुंच जायगी।

(प्लाट फटकर यह दृश्य दिखाई देता है)

देवकी—कहीं वह पापी कंस न आजाये ?

नारद—नहीं, वह इस समय अचेत निद्रा में है। महाराज वसुदेव जब यहां आ जायेंगे, तब उसे होश आयेगा। होश आते ही और पहरेदार की जबानी यहां के समाचार सुनते ही-वह यहां दौड़ा आयेगा।

देवकी—देवर्षि !

नारद—माता !

देवकी—एक बात पूछती हूं।

नारद—पूछो।

देवकी—भगवान् संसार में बार बार अवतार लेकर आते हैं और संसार के पाप मिटाकर फिर चले जाते हैं। परन्तु संसार के पाप नहीं मिटते, वे फिर बढ़ जाते हैं—और इसी लिये फिर-बार बार भगवान् संसार में आते हैं—इसका कारण क्या है ?

नारद—मातेश्वरी, यह सृष्टि आवागमन की सृष्टि है। यहां प्रत्येक प्राणी आता है फिर चला जाता है। जब प्राणियों के

आवागमन का तार नहीं टूटता तो प्राणियों के स्वामी का-प्राणियों की रक्षा के लिये-आने जाने का तार कैसे टूट जायेगा ?

देवकी—तब तो भगवान् भी आवागमन के बन्धन में बँधे हुए हैं, यह समझा जायगा ?

नारद—नहीं, भगवान् में और प्राणियों में इतना अन्तर है कि भगवान् इस आवागमन की सृष्टि में आते हैं स्वतंत्र होकर और प्राणी परतन्त्र होकर। (नेपथ्य में बाजे बजना और श्रीकृष्णचन्द्र की जय सुनाई देना) लो, देवता बाजे बजा रहे हैं और जय जयकार सुना रहे हैं। यशोदा मैया के यहां भगवान् पहुंच गये। महाराज वसुदेव यमुना के इस पार आगये। अब मुझे विदा करो।

देवकी—अभी और ठहरो, उन्हें आजाने दो।

नारद—यह लो, सामने से वेही आरहे हैं। अब मुझे जाने दो। नारायण, नारायण।

[नारद का जाना]

वसुदेव—(आकर) प्रिये, लो उन्हें कुशल पूर्वक वहां पहुँचा आया और इस कन्या को यहां ले आया।

देवकी—देखूं। (कन्या को गोद में लेकर) आहा, कितनी सुन्दर है। इसकी सुन्दरता भी संसार की सुन्दरता से अनेक अंशों में बढ़कर है। मालूम होता है कि सुन्दरता स्वयं कन्या

घनकर यशोदा के यहां जायी है। स्वयं भुवन-मोहिनी शक्ति भुवन मोहने को आयी है। आओ बेटी, मैं तुम्हें इस शैय्या पर सुलादूँ। और धीरे धीरे तुम्हारा पंखा झलूं (शैय्या पर लिटाकर पंखा झलती है, चाणूर आता है)

चाणूर—हैं ! यह कोलाहल कैसा ? क्या आठवीं सन्तान का जन्म होगया ? अभी राजाधिराज के पास यह समाचार पहुँचाता हूं और जैसा कि उन्होंने कह रक्खा है उसके अनुसार उन्हें लिवा कर लाता हूं।

[चाणूर का जाना]

वसुदेव—प्रिये ! देखी तुमने यह माया ? मैं जब गोकुल से लौट आया तब इन पहरेदारों को होश आया।

देवकी—यह सब उन्हीं लीलाधारी की लीला है। वे संसार में आकर संसारियों की सी लीला करते हुए भी-इन लीलाओं से पृथक् रहते हैं। अच्छा एक बात कहूँ ?

वसुदेव—कहो।

देवकी—मैं इस लड़की को उस राक्षस के सामने रखना नहीं चाहती। मेरे लाल को यशोदा पाले और मैं उसकी लड़ैतो को मरवा डालूं ? यह कैसा अमानुषिक प्रतिदान है ! यह कैसा स्वार्थ-पूर्ण अनुष्ठान है !

वसुदेव—प्रिये, तुम्हारे हृदय में बड़ा वात्सल्य है। बड़ी कोमलता है। तुम यह नहीं समझतीं कि यह कन्या कन्या नहीं है, यह तो भगवान् की महामाया है—जिसने भगवान् की इच्छा से-हमारी तुम्हारी रक्षा के वास्ते कन्या का रूप बनाया है।

देवकी—कुछ भी सही, पर यह मुझे बड़ी प्यारी मालूम हो रही है। इसे देख कर यह माता अपने सब पुत्रों का वियोग भूल गयी है :—

यह मां वह मां है-जीवन भर जिसने तकलीफ़ उठाई है।
एक दिन भी अपने बच्चों का मुख नहीं निरखने पाई है॥
क़न्या भी गोदी आयी है तो ऐसी होकर आई है।
जो बन्द क़साई घर में है जिसको तक रहा क़साई है॥

[कंस का प्रवेश]

कंस—कहां है ? कहां है ? मेरे वाण का लक्ष्य, मेरी खड्ग का आखेट, मेरे क्रोध का भाजन, मेरी भूख का भोजन कहां है ?

वसुदेव—(कन्या को इशारे से बता कर) वह है, भूखे राक्षस, तेरी राक्षसी भूख का भोजन वह है।

कंस—(कन्या को देख कर) हैं, यह तो लड़की है ! यह मैं क्या देख रहा हूं :—

अचम्भा है या जादू है, तमाशा है या माया है।
जिसे लड़का समझता था, वह लड़की बन के आया है॥

देवकी, देवकी यह लड़की कैसी? क्या आकाशवाणी झूठी है? या तुम दोनों की इसमें कुछ चालाकी है?

वसुदेव—हम आठों पहर आपके क़ैदी, हमारे ऊपर हर वक्त आपका पहरा, फिर चालाकी कैसी?

कंस—तो क्या सचमुच लड़की है? आठवें गर्भ का फल यह लड़की है?

वसुदेव—जो कुछ है वह तुम्हारे आगे रक्खी है।

कंस—अच्छा तो यही मेरी खड्ग का निशाना बनेगी।

(लड़की लेने को हाथ बढ़ाता है)

देवकी—भैया, भैया, जो होना था वह हो गया, अब दया करो, यह कन्या तुम्हारा काल नहीं है—तुम्हारी भाञ्जी है, इसे क्षमा करो।

कंस—क्यों?

देवकी—यों कि माता का स्नेह नहीं मानता। आज तक जितनी सन्तानें उत्पन्न हुईं सब तुमने छीन लीं, अब इसे जीने दो। माता की आँखों के आगे माता की इस पुत्री को जीने दो। इस लाड़ली को जीने दो। इस लड़ैती को जीने दो।

कंस—ऐसा नहीं हो सकता।

देवकी—मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ, मैं तुमसे भिक्षा माँगती हूँ कि मेरी गोद सूनी मत करो। यह निर्दोषिनि है, इस पर दया दिखाओ। यह कन्या है, इसे अपने क्रोध की बलि न बनाओ।

कंस—देवकी, मौन हो जाओ:—

न आया डर से वह मेरे यह उसकी छाया आयी है।
मेरी तलवार से कटने को उसकी माया आयी है॥

देवकी—है यही स्वीकार तो पहले यह आँखें फोड़ दो।
इस गले को घोट डालो, यह कलेजा तोड़ दो॥

कंस—रहने दे, रहने दे, यह करुणाक्रन्दन रहने दे, और अपनी आँखों के सामने अपनी सन्तान की आखिरी बलि देख—

[पत्थर पर कन्या को मारता है, कन्या उसके हाथ से छूटकर बिजली बनकर आकाश में पहुँच जाती है]

महामाया—(आकाश से)

व्यर्थ नराधम तू हुआ मेरे ऊपर लाल।
गोकुल में होगया है, पैदा तेरा काल॥

[आश्चर्य से कंस आवाज़ की तरफ़ देखता है, उधर सीन ट्रांस्फ़र होता है यशोदा को भगवान् के दर्शन होते हैं, देव-मण्डल से पुष्प बरसते हैं और 'श्रीकृष्णचन्द्र की जय" ध्वनि होती है। इसी आनन्द में धीरे धीरे यवनिका गिरती है]

ड्राप-सीन

ऊषा-अनिरुद्ध
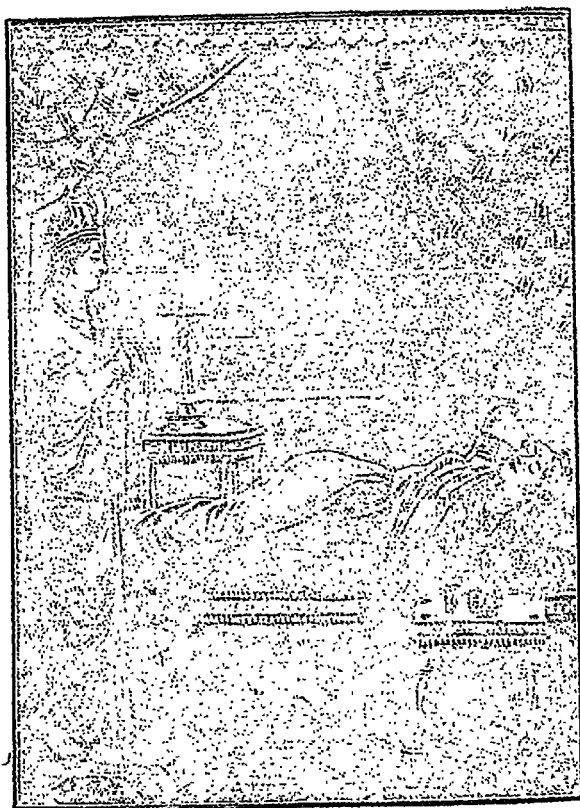
इस नाटक का मूल्य ।||)
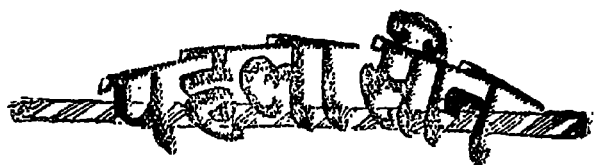
"स्थान–महल"

(कंस का प्रवेश)

कंस—वर्षा, बिजली, आँधी, अग्नि, महामारी और भूकम्प यह सब मिलकर भी मुझे उतना कष्ट नहीं पहुंचा सकते–जितना कि आज एक छोटा सा बालक पहुँचा रहा है। मैंने भादों बदी अष्टमी से दस दिन पहले और दस दिन बाद–जन्म लेनेवाले तमाम बालकों को मरवा डाला, परन्तु वही नहीं मरा जिसका मरना मेरे जीवन के वास्ते एक आवश्यकोय कार्य समझा जा रहा है। ओह! ठहर जा, प्रात काल के समय उदय होने वाले ग्रीष्म ऋतु के सूर्य्य, मेघ मण्डल बनकर मैं तेरे ऊपर छा जाऊँगा। सायंकाल के समय प्रकट होनेवाले पूर्णमासी के चन्द्र, राहु बनकर मैं तुझे ग्रस जाऊँगा:–

तुझे सुरलोक कहता है कि तू लीलावतारी है।
तो मैंने भी तुझी से शत्रुता करनी विचारी है॥

जो तू उस लोक का स्वामी, तो मैं इस लोक का स्वामी ।
प्रकट हो जायगी कुछ दिन में किसकी शक्ति भारी है ॥

(अक्रूर का आना)

अक्रूर—महाराज ?

कंस—कौन ? अक्रूर ? क्या खबर है ?

कंस—महाराज, पूतना की तरह शकटासुर और तृणावर्त्त को भी उस नन्दनन्दन ने यमलोक पहुंचा दिया ।

कंस—और ?

अक्रूर—एक दिन यशोदा को अपने मुख में त्रिलोक दिखा दिया ।

कंस—और ?

अक्रूर—यमलार्जुन को नलकूबर और मणिग्रीव बनाकर परम पद पर पहुँचा दिया ।

कंस—अरे यह तू मेरे शत्रु के समाचार सुना रहा है या उसके गुणानुवाद गा रहा है ?

अक्रूर—जो कुछ समझिये, पर अक्रूर आपको सब सच्चा हाल बता रहा है ।

कंस—यह तो सब पुरानी खबरें हैं । नई खबर क्या है ?
अक्रूर—नई खबर यह है कि वत्सासुर और बकासुर जो यहां से भेजे गये थे—

कंस—हाँ हाँ-

अक्रूर—उन्हें भी-

कंस—उस बालक ने मार डाला ?

अक्रूर—जी हाँ।

कंस—ओह ! तो अब अघासुर को भेजो। अपने यहाँ के बड़े बड़े योद्धा अगर इस समय काम नहीं आयेंगे तो कब आयेंगे ?

अक्रूर—एक बात कहूं राजन् ?

कंस—कहो।

अक्रूर—आप अपने दुर्भाव को सद्भाव में परिवर्तित कर डालिये।

कंस—मुझ में कौन सा दुर्भाव है अक्रूर ? जब मुझे यह मालूम हो चुका है कि वह बालक मेरा काल है तो मैं तरह तरह के उपायों द्वारा उसे समाप्त कर देना चाहता हूँ। क्या इसी से मैं दुर्भाव वाला हो गया ?

अक्रूर—आपका काल बनकर जो पवित्र अवतार इस संसार में हुआ है, वह तभी तो हुआ जब आपके पापों ने इस स्वर्गीय भूमि को नरक-भूमि बना दिया, जब आपका अत्याचार भूमण्डल से नभमण्डल तक छा गया ?

कंस—मेरा अत्याचार ?

अक्रूर— जी हाँ, आपका अत्याचार।

कंस—क्या अब भी मैं अत्याचारी हूं ?

अक्रूर—निःसन्देह ।

कंस—इसका प्रमाण ?

अक्रूर—इसका प्रमाण उन माताओं की छातियों में है—जिनके बच्चे सौरी ही में आपने मरवा डाले हैं । इसका प्रमाण उस बुड्ढे बाप के हृदय में है—जिसे सदुपदेश देने के अपराध पर आपने राजा से बन्दी बनाकर स्वयं उसके सिंहासन को सुशोभित किया है । और एक बात कह दूँ महाराज ?

कंस—कहो न, वह भी कहो ।

अक्रूर—जब आपका काल गोकुल में नन्द के यहां उत्पन्न हो गया है और आपको इस बात का विश्वास भी हो गया है, तो फिर आपने देवकी और वसुदेव को कारागार में क्यों डाल रक्खा है ? क्या यह अन्याय नहीं है ? क्या यह अन्धेर नहीं है ?

कंस—मैंने तो वही किया था—आठवीं सन्तान उत्पन्न हो जाने के बाद उन्हें कारागार से मुक्त कर दिया था । पर मुझे जब यह मालूम हुआ कि आठवीं सन्तान को उन्होंने चालाकी से गोकुल पहुंचा दिया तो मैंने फिर उन्हें कारागार में डाल दिया । क्या यह अन्याय हुआ ? अक्रूर, तू जरूर मेरे शत्रु से मिला हुआ है, तू जरूर इस लङ्का का विभीषण हो रहा है । यदि तू मेरे

विचारों का इसी तरह विरोधी रहेगा तो विभीषण की तरह लात मार कर मैं तुझे मथुरापुरी से निकाल दूँगा ।

अक्रूर—यदि तुम विभीषण की तरह लात मार कर मुझे मथुरापुरी से निकाल दोगे तो तुम्हारा भी रावण जैसा परिणाम होगा। राजन्, मैं तुम्हारा शत्रु नहीं हूं, मित्र हूं। मेरी आवाज़ सुनने में कड़वी है परन्तु उसका फल मीठा है—

पाप भी उतना करो खप जाय जो, अन्यथा डूबेगा लेकर पाप ही ।
बैठते जिस डाल पर हो जाके तुम, काटते हो फिर उसे क्यों आप ही ॥

कंस—जाओ, मेरी आज्ञा का पालन करो, मैं तुम्हारे यह उपदेश नहीं सुनना चाहता ।

अक्रूर—आह ! किसी ने ठीक कहा है :—

जैसी हो होतव्यता, तैसी ही मति होय ।
भाग्य रेख के लेख को मेट सके नहिं कोय ॥

(जाना)

कंस—निकम्मे और कायर जीव ! तू मेरी महत्वाकांक्षा को नहीं समझ सकता। तू क्या सप्त द्वीप और नव खंड अगर एक तरफ़ हो जायें तो भी कंस अपने विचारों को नहीं बदल सकता :—

आग से लिपटूँगा मैं, खेलूँगा मैं घनघोर से ।
विश्व के मस्तक पै चढ़ जाऊँगा अपने जोर से ॥
मेरे भय से कांपता है स्वर्ग, पृथ्वी मौन है ।
मैं हूँ नारायण जगत् का मुझ से बढ़ कर कौन है ?

(प्रस्थान)

—o—
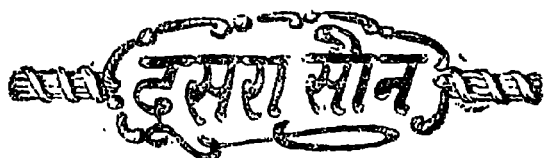
स्थान—'वृन्दावन—यमुना तट'

(एक कदम्ब—वृक्ष के नीचे एक शिला पर श्रीकृष्णचन्द्र बैठे वंशी बजा रहे हैं, नारद दूर से उन्हें देख देख कर प्रेम—मग्न हो कर गीत गा रहे हैं)

नारद—

(गायन नं० १३)

जिनको मुनियों के मनन में नहीं आते देखा ।
हमने गोकुल में उन्हें गाय चराते देखा ॥
हद नहीं पाते हैं अनहद में भी योगी जिन की ।
तीर यमुना के उन्हें वंशी बजाते देखा ॥
जिनकी माया ने चराचर को नचा रक्खा है ।
गोपियों में उन्हें खुद नाचते गाते देखा ॥
जो रमा के हैं रमण विश्व के पति "राधेश्याम" ।
ब्रज में आके उन्हें माखन को चुराते देखा ॥

श्रीकृष्ण—ब्रह्मपुत्र

नारद—भगवन् !

श्रीकृष्ण—आज आप इतने आनन्द में क्यों हैं ?

नारद—मुझ से पूंछ रहे हैं महाराज ? इस यमुना की लहरों से पूछिये कि आज वे इतनी उछल उछल कर क्यों नाच रही हैं ? इस कदम्ब के वृक्ष की डालियों से पूछिये कि आज वे इतनी रहस रहस कर क्यों आपे से बाहर हुई जारही हैं ? वंशीधर, आपकी इस वंशी की मन्द मन्द ध्वनि, प्राणीमात्र की श्वासों में रहती हैं। मुरली मनोहर, आप की जिस मधुर मुरली की तान, जल की तरङ्गों में, वायु के झोकों में, बादल की गरज में और बिजली की चमक में अपना चमत्कार रखती है—आज वही, इस वृन्दावन की भूमि पर, इन गौओं के बीच में, इस सेवक के सामने, जब प्रत्यक्ष होकर आसावरी बजा रही है—तो क्यों न सारा संसार एक बार आनन्द में नहा जाय ? क्यों न चराचर में अलौकिक प्रेम समा जाय ?—

गत हुई वीणा, सुनी वंशी की गत जब आप की ।
राग छूटा, ध्वनि सुनी जब राग के आलाप की ॥
सप्त स्वर ने सप्त मण्डल से मिलाया तार है ।
लोक में आलोक है, जग-जग रहा इस तार है ॥

श्रीकृष्ण—देवर्षे, मेरी इस घाँस की बाँसुरी को आप अपनी वीणा ही का एक तार समझिये। इसकी झंकार को उसी की एक झंकार समझिए। आप ही ने तो अपनी वीणा द्वारा इस नाद विद्या का प्रकाश संसार में फैलाया है, जिसका एक किञ्चित् सा भाग इस ग्वाले के भी हाथ आया है:—

बस रही तुम्हारी ही वीणा, मेरी इस तुच्छ बँसुरिया में।
महिमा है महा तुम्हारी ही, मोहन की मधुर मुरलिया में॥

नारद—नहीं, मेरी वीणा से जो विषय रह गया था, वह आप की वंशी ने पूरा करके दिखाया है। मैं जिस तत्त्व को जगत् के लिये बता नहीं सका, वह आपने बताया है। कहिये—रामावतार में तो मर्यादा और वीरता दिखाई, अब इस अवतार में भक्तों को क्या दीजियेगा?

श्रीकृष्ण—वही, जिसका गौण रूप में अभी आपने संकेत किया है?

नारद—अर्थात्?

श्रीकृष्ण—प्रेम।

नारद—और?

श्रीकृष्ण—ज्ञान। मेरे इस रूप की पहली अवस्था-प्रेम-वंशी की मधुर ध्वनि घर घर पहुंचायगी, और पिछली अवस्था-ज्ञान, गीता का प्रकाश प्राणियों को दे जायगी।

नारद—तो फिर कंस आदि राक्षस किस तरह समाप्त होंगे ?

श्रीकृष्ण—उतने समय के लिये वीरता काम में लानी ही पड़ेगी। परन्तु वह इस जीवन की प्रधान वस्तु नहीं होगी:—

आज तो कुछ और ही आदर्श है,
आज अपना और ही कुछ लक्ष्य है।
विश्व-वासी जान लें इस बात को,
विश्व में उन सब का क्या कर्त्तव्य है॥

नारद—धन्य लीलाधारी, जो चाहे सो लीला कीजिये। आप सर्वशक्तिमान् हैं, सामर्थ्यवान् हैं। अच्छा अब मुझे आज्ञा ?

श्रीकृष्ण—जाएंगे ? अच्छा, मैं भी अब अपनी राधा से मिलना चाहता हूं। देवर्षे, व्रजभूमि में जन्म लेकर—नन्द यशोदा के यहां पलकर-इन गौओं को चराकर-इस कदम्ब के नीचे बैठकर-इस यमुना में न्हा कर-मैं आज गोलोक और शेष-शैया को भूल सा गया हूँ।

नारद—यह आप क्या कहने लगे दीनानाथ ?

श्रीकृष्ण—ठीक कह रहा हूं मुनिराज। आप क्या ब्रह्मा और इन्द्रादि भी शीघ्र ही मेरे इस चरित्र को देखकर धोखे में आजायंगे। मैं जानता हूँ, और कोई नहीं जानता, कि राधा मेरे इस जीवन का सार है, राधा मेरी इस लीला का आधार है,

मेरी वंशी अब उसी को बुलाना चाहती है, मेरी मुरली अब उसी का राग गाना चाहती है:—

राधा मेरे जीवन का धन, राधा मेरे सुख का धाम ।
राधा को जो आराधेगा, बाधा का न रहेगा काम ॥
पहले उसका, पीछे मेरा लोग जपेंगे, ऐसे नाम ।
राधामाधव, राधामोहन, राधावल्लभ, राधाश्याम ॥

नारद—त्रिभुवननाथ:—

तुम्हारे खेल न्यारे हैं, अनोखे तुम खिलैया हो ।
कभी गोलोक में थे, आज गोकुल के बसैया हो ॥
किसी दिन थे अवधपति, इस समय व्रज के कन्हैया हो ।
धनुष तब हाथ में था, बाँसुरी के अब बजैया हो ॥
अगम लीला है लीलाधर, बड़े लीलावतारी हो ,
तुम्हें वह जान सकता है, कृपा जिस पर तुम्हारी हो ॥

(नारद का जाना, भगवान श्रीकृष्ण का वंशी बजाना, जिसको आवाज़ सुनकर राधा जी का आना)

राधा—धन्य बाँस की बाँसुरी, धन्य रसीली तान ।
बींध दिया सारा हृदय, खींच रही है प्रान ॥

श्रीकृष्ण—राधे !

राधा—श्याम !

श्रीकृष्ण—बादल का एक एक टुकड़ा, दूसरे दूसरे टुकड़ों से टकरा कर, फिर गरज उठा। कदम्ब का एक एक पत्ता, दूसरे दूसरे पत्तों से लिपट कर, फिर शीतल मन्द और सुगन्धि वाली वायु का खिलौना बन गया। यह सब क्या हो रहा है, मेरी राधिके ?

राधा—क्या होरहा है ? घनश्याम बोल रहे हैं। घनश्याम कुछ बरसा रहे हैं। चातकों के वृन्द स्वाति की बूंदों का पान करके अपनी अपनी प्यास बुझा रहे हैं। ओह ! यह कैसा मिठास है ! यह कैसी शान्ति है ! यह कैसा स्वर है ! यह कैसा राग है ! जिसका आनन्द इस हृदय ही में नहीं सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो रहा है।

श्रीकृष्ण—बरसानेवाली ! वह सुधा बरसाने वाली तुम हो या मैं ?

राधा—तुम भी और मैं भी। मैं भी और तुम भी। :—

मैं तुम में लय जब कर डाला तो दूर दुई का नाता है।
मैं तुम में हूँ तुम मुझ में हो, बस एक स्वरूप दिखाता है॥

श्रीकृष्ण—वृषभानुकुमारी, तुम्हारा यह दिन प्रतिदिन बढ़ने वाला प्रेम-जिस पद पर पहुँच गया है--उसे अवलोकन कर मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

राधा—कहिये।

श्रीकृष्ण—नाराज तो न होगी ?

राधा—अपने मनमोहन से ? अपने जीवन-धन से ?

श्रीकृष्ण—क्या अनन्य प्रेम करती हो ?

राधा—इसका उत्तर सूर्य्य की किरणें देंगी।

श्रीकृष्ण—क्या अगाध स्नेह रखती हो ?

राधा—इसका उत्तर यमुना की लहरें देंगी।

श्रीकृष्ण—तो उसी प्रेम के नाते—

राधा—हाँ हाँ—

श्रीकृष्ण—अपने प्रेम की इच्छा से—

राधा—क्या करूँ ?

श्रीकृष्ण—अपने प्रेम को छुपा दो।

राधा—नहीं-अब वह नहीं छुपाया जा सकता। संसार को समझा दो कि पति और पत्नी के नाते का प्रेम ही प्रेम नहीं है, प्रेम के और भी बहुत से रूप हैं। मैं अपने प्राणप्यारे से प्रेम करती हूँ-उस तरह का, जिस तरह का प्रेम पूर्णमासी के चन्द्रमा को देखकर समुद्र की लहरें उससे करती हैं।

श्रीकृष्ण—और ?

राधा—जैसा प्रेम, सावन भादों के बादलों को देखकर, मोरों की पंक्तियाँ उनसे करती हैं।

श्रीकृष्ण—और ?

राधा—और मेरे प्रेम की पूरी व्याख्या सुनना चाहते हो माधव ? अच्छा तो और सुनो। मेरा प्रेम वैसा प्रेम है जैसा कि एक कवि की मनोवृत्ति कविता के अलंकार से रखती है, जैसा कि एक हिन्दू-नारी पर्व्व के दिन किसी तीर्थ से रखती है।

श्रीकृष्ण—धन्य बाले, तुम्हारी इन्हीं बातों ने इस माधव को बावला बना दिया है।

राधा—या उस माधव ने इस राधा को बावली बना दिया है।

[ललिता विशाखा आदि गोपियों का प्रवेश]

गोपियाँ—

(गायन नं० १४)

गगरी ढलक न जाय गोरी।

जमुना के तीरे, चलो सब धीरे, भोरी भोरी ब्रज छोरी।

लचके न गुरिया, पतली कमरिया, छोड़ो सखी झकझोरी॥

—०—

ललिता—ओहो ! यह तो यहाँ खड़ी हैं, जल की भरी हुई गगरी वहाँ यमुना के किनारे वाट निहार रही है !

विशाखा—अजी इस मुरली के आगे उस गगरी की कौन सुनता है ?

ललिता—नटवर, तुम बड़े नटखट हो, हम जल भरने जिस घाट पर आया करती हैं उसी घाट के मार्ग में नित्य मिल जाया करते हो और हमें सताया करते हो।

श्रीकृष्ण—मैं तुम्हें सताया करता हूं ? कदापि नहीं। मैं तो इन गौओं के दूध को बलवान् और मीठा बनाने के लिये यहाँ बैठा बैठा अपनी वंशी बजाया करता हूँ।

विशाखा—गौओं का नाम क्यों लेते हो ? यूँ कहो कि वंशी बजा बजा कर व्रज ललनाओं को बुलाया करता हूं।

श्रीकृष्ण—देखो जी, मैं तुम किसी से भी कुछ नहीं कहता हूं। यहां बैठा बैठा अपनी वंशी बजाता हूं। इस पर तुम मुझे और मेरी वंशी को बार बार टोका करती हो। वंशीधर, मुरलीधर, इत्यादि नाम ले लेकर मुझे छेड़ा करती हो। तुम्हारी यह बातें अच्छी नहीं। मैं यदि तुमसे कुछ कहूंगा तो तुम रिसिया जाओगी, और यशोदा मैया के पास उलहना लेकर पहुंच जाओगी।

राधा—मोहन, तुम यह मुरलिया बजाना छोड़ दो।

श्रीकृष्ण—मैं तो इसे छोड़ना चाहता हूं। पर क्या बताऊँ, ये ही मुझे नहीं छोड़ती।

राधा—क्यों ?

श्रीकृष्ण—यों कि जिस समय तुम मेरे पास नहीं रहती हो, उस समय ये ही मेरा जी बहलाया करती है। यह मेरी उपराधा है।

ललिता—(राधा से) लो सखी, तुम्हारा भाग बांट लेनेवाली एक और बड़भागिनी पैदा होगई।

विशाखा—हाँ देखो ना, जरा सी बांस की बँसुरिया, हमारी राधा रानी की बराबरी करने लगी।

ललिता—बराबरी क्या, वह तो इन से भी बढ़ गयी। जब देखो तब बिहारीजी के मुंह से ही लगी रहती है।

विशाखा—और कलेजा खींच लेनेवाले बोल बोलती है:—

है नहीं बाँस की बँसुरी यह, ब्रज वनिताओं की वैरिन है।
प्रियतम के अधरों से लग के, बन बैठी सदा-सुहागिन है॥

राधा—अच्छा सच सच बताओ-श्यामसुन्दर, तुम इसका बजाना क्यों नहीं छोड़ते ?

श्रीकृष्ण—यों कि यशोदा मैया माखन बहुत खिला दिया करती हैं। मैं इसे बजा बजा कर उसे पचाया करता हूं!

श्वासों के उतार चढ़ाव की क्रिया से अपने शरीर को स्वास्थ्य का लाभ पहुंचाया करता हूँ।

ललिता—लो, वंशीधर तो वैद्यराज भी हैं।

विशाखा—अजी, योगिराज भी हैं।

राधा—सखी, मैं इनकी वंशी किसी दिन चुरा लूंगी।

ललिता—यह किसलिये ?

राधा—इसलिये कि इस वंशी ने मेरा मन चुराया है।

विशाखा—वंशी ने मन चुराया है या वंशीधर ने भुलाया है ?

श्रीकृष्ण—गोपकुमारियो, यह क्या चोरा चोरी की बातें कर रही हो ? किस को चोर बता रही हो ?

ललिता—तुम्हें, तुम ने हमारी राधा रानी का मन चुराया है।

श्रीकृष्ण—या तुम्हारी राधा रानी ने मेरा मन चुराया ?

विशाखा—सखी चलो, इन से कोई जीत नहीं सकता।

ललिता—(राधा से) हाँ चलो, बड़ी देर होगयी।

(ललिता विशाखा का जाना)

राधा—मोहन !

श्रीकृष्ण—मोहिनी !

(ललिता विशाखा का वापिस आना)

ललिता—ओहो, तुम तो यहीं खड़ी रह गयीं ?

राधा—इस माधवीलता में जरा साड़ी उलझ गयी थी।

विशाखा—बलिहारी, बलिहारी:—

सखियों को चाल चलाती हो, वह कहो चाल जो मन में हो ।
प्यारी साड़ी का नाम न लो, इस समय तुम्हीं उलझन में हो ॥

(गायन नं० १५)

सखियाँ—

धीरे धीरे चलो न राधा प्यारी ।
सदा मतवारो रहीं हो, काहे मतवारी भई हो ?
गई मति मारी ? धीरे धीरे चलो न राधा प्यारी ।

राधा—

परत कांकरी तनिक सी होत जिया बेचैन ।
वे व्याकुल कैसे जियें, जिन नैनन में नैन ॥

सखियां—

अजो यह गैल छोड़ो ना, भई बड़ी बेर बढ़ो ना ।
सुनो सुकुमारी ! धीरे धीरे चलो न राधा प्यारी ॥

—०—

(ललिता, विशाखा, और राधा का जाना)

श्रीकृष्ण—गयी, प्राणेश्वरी राधा गयी, तो वंशी, प्यारी वंशी, तुम दूसरी तान बजाओ और ग्वाल बालों को बुलाओ ।

(वंशी बजाना, ग्वाल बालों का आना)

सब—जय, वंशी वाले की जय।

श्रीदामा—देखो मुरलीमनोहर, यह मनसुखा बड़ा उत्पाती होगया है। गोपियाँ जब यमुना नहाने जाती हैं तो उनके घरों में घुस जाता है और माखन चुरा चुरा कर खा जाता है।

श्रीकृष्ण—खाने भी दो, माखन चीज़ ही ऐसी है। उसके खाने में बड़ा स्वाद आता है।

श्रीदामा—पर चुरा कर खाना तो महापाप समझा जाता है।

मनसुखा—खाने की चीज़ को चुराना महापाप नहीं कहलाता है। और फिर, हम चोरी कब करते हैं? हम तो केवल सूने घर में जाकर, मटकी में से थोड़ा सा माखन निकाल कर, चख लिया करते हैं। अगर इसलिये हम चोर हैं तो हमारी राय में सारा संसार चोर है। वे गोपियाँ भी चोर हैं जो गैयों के बछड़ों से दूध चुराया करती हैं, अपने आप सारा दुह लिया करती हैं, उन्हें नाम मात्र पिलाया करती हैं।

श्रीकृष्ण—ठीक है, ठीक है।

मनसुखा—वे दूध बेचने वाली भी चोर हैं जो डेढ़ पाव दूध में ढाई पाव पानी मिलाया करती हैं और दाम सेर भर के ले जाया करती हैं।

श्रीकृष्ण—कहे जाओ, कहे जाओ, हारना मत।

मनसुखा—नहीं, हारेंगे कैसे ? ब्रह्मा ने दक्ष को प्रजापति बनाते समय-उसमें कितनी योग्यता है-इस बात को चुराया था। विष्णु ने नारद-मोह की लीला में-वह राजकन्या मेरी माया है, इस रहस्य का चुराया था। शङ्कर ने सीता का रूप बनाने के अपराध में, सती को त्यागते समय-उन से अपने मनके भाव को चुराया था। कवि, कविता को चुराते हैं। विद्यार्थी, पुस्तकों को चुराते हैं। चतुर, दूसरों के विचारों को चुराते हैं। प्रेमी, अपनी प्रेमिका के मन को चुराते हैं। तो हम तो केवल माखन ही चुराते हैं।

श्रीकृष्ण—जय हुई। मनसुखा तुम्हारी जय हुई।

श्रीदामा—क्यों न इनकी जय होती, जब इन की जय का निर्णय करनेवाला भी एक चोर हो ?

विशाल—पूरे माखनचोर तो यही हैं। चोर के साथी सवा चोर।

मनसुखा—अच्छा, हम तो माखन चुराते हैं। और तुम कुछ नहीं चुराते हो ?

श्रीदामा—हम क्या चुराते हैं ?

मनसुखा—तुम अपने पेटों को चुराते हो। सुनो, जब ग्वालिन मटकी भर कर लाती है, तो तुम्हारी जीभ उस में का थोड़ा सा माखन खाने को नहीं लपलपाती है ? पर अण्टी में दाम न होने के कारण तबीयत मर जाती है।

श्रीदामा—हां, हम तो बिना दाम दिये माखन नहीं खाते।

मनसुखा—तो तुम मूर्ख हो, तुम समझते हो कि माखन दामों की वस्तु है? अरे वह बिना दामों की वस्तु है, और सब की वस्तु है।

श्रीदामा—यह कैसे?

मनसुखा—यह ऐसे कि माखन बनता है दूध से, और दूध बनता है उस घास से-जिसे गाय खाती है। वह घास पृथ्वी माता की सम्पत्ति कहलाती है, और पृथ्वी माता सब की सम्पत्ति समझी जाती है।

श्रीकृष्ण—है कोई ऐसा जो इस बात का खंडन करे? मेरे प्यारे सखाओ, माखन-चोरी की लीला में मनसुखा अपराधी नहीं है, मैं अपराधी हूँ। मैंने ही उसे आज्ञा दी है कि ऐसा करो।

श्रीदामा—हैं! तुमने आज्ञा दी है?

श्रीकृष्ण—हां, मैंने आज्ञा दी है। मैं नहीं चाहता कि गौ का दूध, दही और माखन बेचा जाय।

श्रीदामा—यह किसलिये?

श्रीकृष्ण—यह इसलिये कि यदि यह वस्तुएं विकने लग जायेंगी तो घर घर गौ-पालने का जो सनातन नियम है वह बिगड़ जायगा।

श्रीदामा—फिर आपने यह बात गोप गोपियों को क्यों नहीं समझायी ?

श्रीकृष्ण—समझायी, पर उनके ध्यान ही में न आयी। तब हम ने मनसुखा को अगुआ बनाकर माखन चुराने की चाल चलायी।

श्रीदामा—क्यों ?

श्रीकृष्ण—यों कि हमारा स्वभाव ही ऐसा है। पहले प्रेम से समझाते हैं, अच्छी तरह ज्ञान कराते हैं, फिर भी मानने वाला हमारी बात को नहीं मानता तो दण्ड-नीति काम में लाते हैं। बाल सखाओ, तुम सब के लिये आज मेरा खुला हुआ सन्देश है-कि माखन खूब खाओ। चोरी से मिले चाहे बरजोरी से मिले, जितना भी खा सको खाओ। तुम्हें भूल न जाना चाहिये कि कंस, रोज गोकुल के बालकों को अपने राक्षसों द्वारा पकड़वाता है और वध कराता है। मेरे साथियो, तुम्हें माखन खा खाकर इतना बलवान् बनना चाहिये कि उसका भेजा हुआ कोई राक्षस यदि तुम्हारी तरफ़ एक उंगली उठाये तो तुम उसका सारा हाथ मरोड़ डालो, वह अगर बुरे भाव से ज़रा सा भी सिर उठाये तो तुम उसका सारा सिर तोड़ डालो। इस शक्ति का दाता गौ माता का दूध, दही और मक्खन है, हमारा यही भोजन है:—

गाय हम लोगों को बलवान् किया करती है ।
घास खुद खा के हमें दूध दिया करती है ॥
धर्म्म यह अपना है, गुण गायें गऊ माता के ।
प्राण भी देदें जो काम आयें गऊ माता के ॥

श्रीदामा—एक बात पूछूं श्यामसुन्दर ?

श्रीकृष्ण—पूछो ।

श्रीदामा—हम भारतवासी गाय को माता क्यों कहा करते हैं ?

श्रीकृष्ण—इसलिये कि वह हमें दूध, दही और माखन दिया करती है । इसलिये कि हमारा देश कृषि-प्रधान देश है । उसके बछड़ों द्वारा हमारी खेती हुआ करती है । सुनो, हम भारतवासी जिस माता के उदर से जन्म लेते हैं उस माता को माता मानते ही हैं, उसके अतिरिक्त और भी हमारी कई माताएं हैं ।

श्रीदामा—वह कौन कौन ?

श्रीकृष्ण—माता के उदर में नव मास रहने के बाद हम जिस भूमि की गोद में पहली बार आते हैं, उस जन्म-भूमि को भी अपनी माता मानते हैं । वह हमारी दूसरी माता है:—

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" ।

श्रीदामा—उसके बाद ?

श्रीकृष्ण—जिस माता की कोख से हमने जन्म लिया है वह तो हमें तीन चार वर्ष तक ही दूध पिलाया करती है, परन्तु आजन्म हमें दूध पिला पिलाकर पालने वाली हमारी तीसरी माता है गोमाता ।

श्रीदामा—और फिर ?

श्रीकृष्ण—मृत्यु के पश्चात् मोक्ष दिलाने वाली, हम हिन्दुओं की चौथी माता गङ्गा या यमुना है जो जीवन भर माता की तरह हमें न्हिलाती है और अन्त में परम धाम पहुंचाती है ।

श्रीदामा—धन्य प्रभु, आपके इन उपदेशों से आज हम कृतार्थ होगए । आज से हम इन सब माताओं को माता मानेंगे । बोलो जन्मदाता की—

सब—जय ।

श्रीदामा—जननी जन्मभूमि की—

सब—जय ।

श्रीदामा—गोमाता की—

सब—जय ।

श्रीदामा—गङ्गा और यमुना माता का—

सब—जय ।

[बलराम का प्रवेश]

बलराम—कन्हैया ! तुम यहाँ सखाओं के साथ मौज उड़ा रहे हो, उधर नहीं देखते क्या हो रहा है ?

श्रीकृष्ण—क्या हो रहा है भैया बलदाऊ ?

बलराम—एक अजगर तमाम ग्वालों को अपनी श्वास से खींचकर खाये जा रहा है।

श्रीकृष्ण—चलो सखाओ चलो, अपने भाइयों को इस कष्ट से बचाओ।

श्रीदामा—तुम भी चलो कान्हा ?

श्रीकृष्ण—हाँ मैं भी चलता हूँ ! (स्वगत) मालूम होता है कि अजगर के रूप में कंस का भेजा हुआ यह अघासुर है। अच्छा मैं भी इसकी श्वास से खिंचकर इसके पेट में जाऊँगा और फिर पेट फाड़ कर सब ग्वालों के साथ बाहर आजाऊँगा।

[सबका जाना, ब्रह्मा का आना]

ब्रह्मा—इस माखनचोर की लीला ने मुझ ब्रह्मा को भी भ्रम में डाल रक्खा है। नारद कहते हैं कि वह सच्चिदानन्द हैं। उनका यह कथन समझ में नहीं आता है। अच्छा, परीक्षा करूँ। इन गइयों के बछड़ों का हरण कर लूं।

[ब्रह्मा जी उस जगह की गायों के बछड़ों का अपनी माया द्वारा हरण करते हैं, श्रीकृष्ण ग्वाल-बालों के साथ आते हैं]

श्रीदामा— श्यामसुन्दर, गइयों के बछड़े कहाँ गये।

श्रीकृष्ण—इधर उधर कहीं चर रहे होंगे। मैं अभी वंशी बजाकर बुलाता हूँ (स्वगत) अघासुर को मार कर आया तो यहाँ ब्रह्मा ने मेरी परीक्षा के लिये यह कौतुक रचाया कि गइयों के बछड़ों को ही ब्रह्मलोक पहुँचा दिया। अच्छा, मैं अब अपने रूप में से बछड़ों के अनेक रूप बनाता हूँ और ब्रह्मा जी का अज्ञान मिटाता हूँ।

(वंशी का बजाना, बछड़ों का आना)

श्रीदामा—बोलो श्रीकृष्णचन्द्र की जय।

ब्रह्मा—(आकर स्वगत) हैं, यह कैसा आश्चर्य है ! मैंने जिन बछड़ों का हरण किया था वे सब ब्रह्मलोक में हैं और यहां उसी प्रकार के और उतने ही दूसरे दिखाई दे रहे हैं। परीक्षा हो गयी। सच्चिदानन्द, तुम यथार्थ में सच्चिदानन्द हो।

श्रीकृष्ण—मनसुखा ! तुम इन सब सखाओं को साथ लेकर उन गोपियों के घर जाओ जो आज ब्राह्म मुहूर्त से पहले ही यमुना न्हाने आयी थीं। उनसे कहना कि रात्रि के तीसरे पहर यमुना में नग्न नहाना अनुचित है, वह समय वरुण देव के सोने का है। यदि वे तुम्हारा कहना नहीं मानेंगी, तो फिर मैं उनके चीर हरण करके उन्हें लज्जा दिलाऊँगा, दण्ड-नीति काम में लाऊँगा।

मनसुखा—जो आज्ञा बिहारी जी की, चलो भैया चलें ।

[ग्वाल बालों का जाना, ब्रह्मा जी का प्रकट होना]

ब्रह्मा—क्षमा, क्षमा, सच्चिदानन्द क्षमा । मुझ से बड़ा अपराध हुआ जो मैंने परीक्षा के हेतु आपकी गइयों के बछड़ों का हरण किया । परन्तु आपने तत्काल ही अपना चमत्कार दिखाकर मुझे लज्जित कर दिया । यह उचित ही हुआ ।

श्रीकृष्ण—स्वयम्भू, यह सब खेल तो होते ही रहते हैं । एक बात आप से कह दूं । मैंने स्वयं जब गौ माता के अनेक बछड़ों का रूप बनाया, तो गौ माता को जो मैं माता मानता था, वह नाता और भी दृढ़ होगया । इसलिये आज से गौ माता सारे देवताओं की भी माता हुई । उसके शरीर में सारे देवताओं का निवास आज मैं तुम्हारे द्वारा संसार को दिखाता हूं । गौ-माता का महत्त्व सारी सृष्टि को बताता हूं ।

[उस गाय का दर्शन, जिसके प्रत्येक अङ्ग में देवताओं का निवास दिखाई देता है]

"कंस का दर्बार"

(चाणूर के साथ कंस का प्रवेश)

कंस—आखिर यह बात क्या है कि जो योद्धा उस ग्वाले को पकड़ने के लिये गोकुल जाता है, उसका मृत शरीर ही मथुरा में लौटकर आता है।

चाणूर—महाराज, गोकुल के तमाम छोकरों ने अपना एक दल संगठित कर रक्खा है। उस दल का वह नन्द-नन्दन नेता है। यदि यह दल इसी तरह दिन प्रतिदिन बढ़ता रहा—

कंस—तो?

चाणूर—तो गोकुल एक स्वतन्त्र राज्य बन जायगा।

कंस—और उस राज्य का राजा?

चाणूर—वह नन्दलाल कहलायगा।

कंस—तो तुम सब से पहले ग्वालों के उस दल ही में फूट क्यों नहीं पैदा करते?

चाणूर—वही तो कर रहे हैं।

कंस—किस तरह ?

चाणूर—हमने उस ग्वाल टोली को घोषणा करके राजविद्रोही ठहराया है।

कंस—इस से क्या हुआ ? अरे छल से, कपट से, चाल से, जाल से, उस में के कुछ छोकरों को अपनी तरफ़ मिलाया होता, तरह तरह के प्रलोभन देकर अपना बनाया होता, तब तो सफलता का मार्ग निकल भी सकता था। राजविद्रोही की घोषणा से तो वे और भी चिढ़ जायेंगे, और हमें अत्याचारी ठहरा कर अब तक जो लोग उनकी टोली में नहीं मिले हैं उन्हें भी मिलायेंगे।

चाणूर—यह भी हो रहा है महाराज। वह देखिये, सामने से दो छोकरों को साथ लेकर मुष्टिक आ रहा है। मालूम होता है कि इसने इन दोनों को उस मण्डली से तोड़ लिया है. अपनी ओर कर लिया है।

[मुष्टिक का मनसुखा और श्रीदामा को साथ लिये हुए आना]

मनसुखा—जय वंशीवाले की।

श्रीदामा—जय।

कंस—तुम दोनों कौन हो ?

मनसुखा--क्या आप की आँखों में नजले का पानी उतर आया है ? हम दोनों गोपकुमार हैं । वह लड्डू पेड़े कहां हैं ?

कंस--कैसे लड्डू पेड़े ?

मनसुखा--(मुष्टिक के चपत मार कर) क्यों बे ? तूने तो कहा था कि न्योता है ?

श्रीदामा--कुछ सगाई व्याह की भी चर्चा की थी ।

मनसुखा--दान दक्षिणा भी देने की बात थी । अब समझ में आया कि इस चाल से तू हमें इस नराधम के सामने ले आया । अच्छा बे चौकोर चौखटे ! तुझे भी बन्दर का नाच न नचाया हो तो मनसुखा नाम नहीं । अब कभी गोकुल में आना ! चलो श्रीदामा ।

कंस--ठहरो, बालको ठहरो । यहां तुम्हारे लिये लड्डू पेड़े भी हैं, सगाई व्याह भी है, दान दक्षिणा भी है, और-कुछ और बड़ी बड़ी चीजें भी हैं ।

मनसुखा--वे बड़ी बड़ी चीजें क्या हैं ? भैंस भैंसे ? भैंस भैंसे तो यमराज के वाहन समझे जाते हैं । हम तो ग्वाले हैं, गौयें चराते हैं, गौओं का दूध, दही और माखन खाते हैं और ऐसे ऐसे मुर्दारों की खोपड़ी पर तबला बजाते हैं [मुष्टिक के चपत मारता है] यह देखो ग्वालों के खेल । तागड़ दिन्ना नागर बेल । (नाच कर) तागड़ दिन्ना नागर बेल । तागड़ दिन्ना नागर बेल ॥

कंस—तुम बड़े उत्पाती हो ?

मनसुखा—बड़े उत्पाती तो पचीस वर्ष की उम्र में होंगे। अभी तो छोटे से उत्पाती हैं।

कंस—अच्छा यह हँसी दिल्लगी जाने दो, और मैं जा कहता हूं वह सुनो।

मनसुखा—कहिये।

कंस—अगर तुम उस कृष्ण कन्हैया का साथ छोड़ कर मेरे दर्बार में आजाओ तो मैं तुम्हें नये नये पद, नये नये पदक, और नयी नयी पदवियां देकर निहाल कर दूँगा।

मनसुखा—रहने दे अपने पद, पदक और पदवियाँ। उनको तो अब कोई ईंधन उपलों के भाव में भी लेने को तैयार नहीं।

कंस—तो तुम्हे युवराज बना दूँगा।

मनसुखा—अरे हम गद्दी पर बैठ कर राज करने वाले को तो कर्म-हीन समझते हैं। हमारा राज वृन्दावन की हरी हरी घासों का मैदान है, और हमारी राजगद्दी यमुना का किनारा है।

कंस—तो तुम मेरा कहना नहीं मानोगे ?

मनसुखा—कभी नहीं।

कंस—उस कृष्ण कन्हैया का साथ नहीं छोड़ोगे।

मंनसुखा—खबरदार, जो यह बात फिर अपने मुख से निकालो। तू हमें क्या देगा? हमारा ब्रजविहारी तो रोज हमें गइयों का ताजा ताजा मक्खन खिलाता है, रोज हमें वंशी की मीठी मीठी तान सुनाता है। हम और उसे छोड़ दें? असम्भव:—

सूर्य चाहे धूप से सम्बन्ध अपना तोड़ दे।
भूमि चाहे आप क्षण में अपना आपा फोड़ दे॥
पर नहीं यह बात हो सकती है तीनों काल में।
ग्वाल का बच्चा, कन्हैयालाल अपना छोड़ दे॥

कंस—(श्रीदामा से) क्यों? तुम कैसे चुप हो? तुम्हारी भी क्या यही राय है?

श्रीदामा—हां, कुछ इससे भी बढ़ी चढ़ी हुई:—

बर्छी चले, तलवार चले, तीर भी चल जाय।
कोल्हू में चहे कोई मेरी देह को पिलवाय॥
तन की हर एक अस्थि उचारेगी कृष्ण! कृष्ण!!
मर कर भी मेरी राख पुकारेगी कृष्ण! कृष्ण!!

कंस—तो तुम दोनों मरने के लिये तैयार हो जाओ।

मनसुखा—हाहाहाहाहाहाहाहा।

कंस—क्यों, हंसते क्यों हो?

मनसुखा—इसलिये हँसते हैं कि एक ऐसा आदमी जो खुद मरा हुआ है दूसरे को मारना चाहता है।

कंस—तो क्या मैं मरा हुआ हूं ?

मनसुखा—और नहीं तो क्या जिन्दा हो ? पूछो गोकुल के एक एक बच्चे से। पूछो अपनी प्रजा के एक एक समझदार आदमी से। पूछो इस पवित्र देश के एक एक ब्राह्मण और साधु से। पता चल जायगा कि तुम जी रहे हो या मर चुके।

कंस—अरे अभी मैं जिन्दा हूँ।

मनसुखा—तो आगे किसी दिन मर जाओगे। अच्छा, तुम मर कर जब प्रेतलोक पहुँचो तो ग्वालवालों के बाबा दादाओं को उन आत्माओं को जो उस लोक में हों, यह सन्देश सुना देना कि गोकुल में ग्वाल वाल आजकल बड़े आनन्द में हैं।

कंस—ठहर तो जा बकवादिये।

मनसुखा—सुनो साहब ! तुम मरने वाले हो, मैं मरनेवाले की किसी बात का बुरा नहीं मानता। एक बात और कह दूं।

तय कर लो रानियों से, जाकर मथुरानाथ।
कौन कौन सी होंयगी, सती तुम्हारे साथ॥

कंस—बस मौन हो जा।

(तलवार मारना चाहता है, अक्रूर आते हैं।)

अक्रूर—ठहरिये। बालकों के वध करने की आपकी भूख अभी तक नहीं बुझी? आप इन्हें मार कर क्या फल पायेंगे? अगर इनके शरीर आपकी तलवार की भेंट चढ़ जायेंगे, तो यह याद रहे कि जितनी बूंदें इनके खूनों की यहां गिरेंगी, उतने ही शत्रु गोकुल में आपके और बढ़ जायेंगे। इसलिये इन्हें छोड़ दीजिए। (मनसुखा और श्रीदामा से) जाओ बच्चो, मैं तुम्हें स्वतंत्र करता हूं और यहां से चले जाने की अनुमति देता हूं।

मनसुखा—जय, वंशीवाले की जय। (मुष्टिक पर हाथ उठाकर) क्यों बे, एक थाप और लगाऊँ?

(श्रीदामा व मनसुखा का जाना)

कंस—अक्रूर, तुमने जो मेरे इन आखेटों को मेरे आगे से हटा दिया इसका तुम्हें दण्ड देना पड़ेगा।

अक्रूर—दूंगा।

कंस—मैं जो माँगूंगा, वही देना पड़ेगा?

अक्रूर—वही दूंगा, ऋणी होगया।

(जाना)

कंस—जाओ अक्रूर, तुम्हें प्रजा का नेता समझ कर मैं हमेशा दब जाया करता हूं। अन्यथा तुम्हें भी अब तक वसुदेव की तरह बन्दी-गृह में डलवा दिया होता, या सामन्त की तरह

सदैव के लिये सुला दिया जाता। मुष्टिक, चाणूर, मेरी आज्ञा है कि ग्वालों के साथ साथ वह वंशीवाला, जब वन में गाय चराता हो, तो उस वन ही में अग्नि लगवा दी जाय, शत्रुओं के साथ साथ वहां के वृक्षों और वहां की भूमि को भी जला दिया जाय। डरने की कोई बात नहीं:—

मेरे आगे आय तो क्षण में डालं चीर।
वंशीवाला भी कहीं हो सकता है वीर॥

[जाना]

—०—

"स्थान—कालीदह"

[भगवान् श्रीकृष्ण, बलदाऊ, श्रीदामा, मनसुखा, विशाल, सुबल, ऋषभ आदि के साथ गेंद का खेल खेल रहे हैं। नारद एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए गीत गा रहे हैं।]

(गायन नं० १६)

खिलाड़ी खेल रहा है खेल ।
गेंद सृष्टि समतुल्य सुहाती, हरि की लीला जिसे घुमाती ।
कभी आसुरी सत्ताओं पर, कभी देवताओं पर जाती ॥
हाथों ही हाथों में फिरती, अधिक न रखती मेल ।
खिलाड़ी खेल रहा है खेल ॥

[भगवान् बार बार मनसुखा की ओर गेंद फेंकते हैं, इस बात पर श्रीदामा नाराज़ हो जाता है।]

श्रीदामा—छोड़ दो, कन्हैया हमारी गेंद छोड़ दो, तुम बार बार गेंद मनसुखा को दे देते हो, यह बात हमें अच्छी नहीं लगती।

मनसुखा—अरे दाता देता है तो हम लेते हैं, तुम बीच में जल जल कर क्यों राख होते हो? गेंद वह खेलेगा जो गेंद की बराबर सौ पचास लड्डुआ खाय। तुम जैसे नहीं, जिनका एक पेड़े ही में पेट भर जाय।

श्रीकृष्ण—भैया श्रीदामा, नाराज़ न हो। हम मनसुखा को इसलिए बार बार गेंद देते हैं कि आज उसने माखन बहुत खाया है। इस समय यदि हम उसे गेंद का खेल ज़ियादा खिलायेंगे, तो यह खेल ही औषध का काम कर जायगा, उसका माखन पच जायगा।

श्रीदामा—तो यह गेंद क्या वैद्य जी की अजीर्ण-वटी है? अजी यह तो एक मनोरञ्जन की सामग्री है।

श्रीकृष्ण—नहीं, हमारे बड़े बूढ़ों ने मनोरञ्जन और धर्म की आड़ में बहुत सी ऐसी बातें बड़ी चतुराई से हमारे सामने रख दी हैं, जो हमारे स्वास्थ्य के लिये बड़ी लाभदायक हैं।

श्रीदामा—जैसे?

श्रीकृष्ण—जैसे यह गेंद का खेल, जैसे यह गोपालन, जैसे यह यमुना का स्नान और जैसे एकादशी, पूर्णमासी आदि के व्रत तथा तुलसी आदि के बिरवाओं का घर में लगाना।

विशाल—अजी रहने भी दो-दोपहरी के समय यह अपनी भैरवी गुनगुनाना। गेंद खेलना हो तो मनसुखा को इस टोली से निकाल दीजिये।

श्रीकृष्ण—हैं, मनसुखा को इस टोली से निकाल दूं? यह मुझ से नहीं होगा। वह भी इस टोली का एक भाग है। वह भी मेरे इस शरीर का एक अङ्ग है।

मनसुखा—बिहारी जी, जब आप मुझ से इतना स्नेह करते हैं-तो एक काम कीजिये, मेरे ही हो जाइये, इन सब को छोड़ दीजिये।

श्रीकृष्ण—क्या कहा? तुम्हारा ही हो जाऊँ? इन सब को छोड़ दूँ? यह भी मुझ से नहीं होगा। मेरे लिये तो तुम सब एक समान हो। सब भाई मेरे प्राण हो। सुनो, सुनो, बन्धुओ, इस प्रकार के खेल शरीर को स्वस्थ रखने के अतिरिक्त परस्पर संगठन और प्रेम के भावों को भी पैदा करनेवाले हुआ करते हैं। इसी बहाने एक समय में और एक स्थान में हम सब भाई इकट्ठे होकर मिल लिया करते हैं। इस लाभ को यदि हानि का रूप न देना हो तो ईर्षा और द्वेष का त्याग करके एक हो जाओ और अपने खेल को आदर्श खेल बनाओ :—

गोप दल जो बढ़ रहा है नित्य अपने सङ्ग में।
शक्तियाँ यह जाति के आती हैं दुर्बल अङ्ग में॥

एक होकर प्राण तन हम सब का जब मिल जायगा ।
तख्त उस मथुरा के राजा का तभी हिल जायगा ॥

बलदाऊ—अच्छा कन्हैया, तुम किसी की ओर गेंद न पहुंचा कर मेरी ओर पहुँचाओ ।

श्रीकृष्ण—नहीं भैया, इस बार तो मनसुखा ही की पारी हैं, उसके बाद आपकी पारी आयगी । लो सँभलो मनसुखा, मैं गेंद फेंकता हूं ।

[गेंद फेंकते हैं और वह कालीदह में चली जाती है]

मनसुखा—अरेरेरे कान्हा, यह तुमने क्या किया ? गेंद तो कालीदह में चली गयी ।

श्रीकृष्ण—(स्वगत) इसी बहाने मुझे आज काली नाग का मद-मर्दन करना है । उसके विष से ब्रज-मण्डल को बड़ा कष्ट हो रहा है । इसलिए उस विषधर को रमणक द्वीप भेज देना है ।

विशाल—लाओ, लाओ, कन्हैया हमारी गेंद लाओ ।

श्रीकृष्ण—मुझ पर कहाँ है, वह तो यमुना में गयी !

विशाल—नहीं हम तो तुम्हीं से लेंगे ।

कृष्ण—अच्छा मुझ ही से लेना, मैं दूसरी मँगवा दूँगा !

विशाल—नहीं हम तो वही लेंगे ।

श्रीकृष्ण—अच्छा वही लादूंगा ।

विशाल—कैसे ला दोगे ?

श्रीकृष्ण—ऐसे ला दूँगा ।

[श्रीकृष्ण का यमुना में कूदना, बलदाऊ का कालीदह में झाँक कर देखना कि श्रीकृष्ण डूब गए हैं या कालीनाग को नाथने गये हैं]

श्रीदामा—हाय, हाय, यह क्या हुआ ? अपना व्रजविहारी तो कालीदह में कूद पड़ा ? विशाल, यह तूने क्या किया जो एक तुच्छ गेंद के लिये झगड़ा करके अपने साँवलिया को सदा के लिये अपने से अलहदा कर दिया ।

मनसुखा—अरे कोई नन्दबाबा के पास तो यह समाचार पहुँचाओ ।

श्रीदामा—मैं जाता हूं ।

मनसुखा—नहीं, तुम मत जाओ, सुबल और ऋषभ तुम जाओ (दोनों का जाना) विशाल ! जिस तरह उस समय तुम मनमोहन से अपनी गेंद माँगते थे उसी तरह तुम से अब हम अपने मनमोहन को मांगते हैं :—

कहाँ है वह हमारा धन कहाँ है ?
हमारा प्राण और वह तन कहां है ?
बिना उसके न कोई जी सकेगा ।
न एक बछड़ा भी पानी पी सकेगा ॥

श्रीदामा—चलो हम सब भी इस कालीदह-में कूद जायें। या तो बनवारी को निकाल कर लायें, नहीं तो स्वयं भी समाप्त होजायें :—

प्राण जब चलदिये तो व्यर्थ यह सारा तन है।
हैं न ब्रज-राज तो किस काम का यह ब्रज-वन है?
आज जीवन का महातट यही कालीदह है।
सारे ब्रजधाम का मरघट यही कालीदह है॥

(सब डूबने को जाते हैं, बलदाऊ रोकते हैं)

बलदाऊ—ठहरो, यह क्या कर रहे हो?

श्रीदामा—जहां हमारा कन्हैया गया है वहीं हम भी जा रहे हैं।

बलदाऊ—तुम वहां तक नहीं जा सकते।

श्रीदामा—क्यों?

बलदाऊ—यों कि तुम अभी उतना गहरा गोता लगाना नहीं जानते हो जितना कन्हैया जानता है, वह गेंद के बहाने काली नाग से युद्ध करने गया है। अभी उस विषधर पर विजय प्राप्त करके वह हमारे पास आयेगा और हमें आनन्द पहुंचायेगा।

मनसुखा—वाह बलदाऊ भैया! तुम कैसे बड़े भैया हो, जो ऐसे समय जब कि छोटा भैया कालीदह में चलागया है उसकी सहायता को न स्वयं कूदते हो और न हमें कूदने देते हो?

बलदाऊ—हाँ, मैं ऐसा ही बड़ा भैया हूं। मैं उन दुर्बल हृदयवाले भाइयों में नहीं हूं, जो अपने छोटे भाइयों को ठंडी और गर्म हवा में खड़ा देखकर भी पुकार उठते हैं कि—"भैया को कहीं जुकाम न होजाय"—"भैया का कहीं जी न घबराय"। मैं वह बड़ा भैया हूं जो अपने छोटे भैया को एक बार सिंह से कुश्ती लड़ने की आज्ञा दे दूंगा। साक्षात् यमराज से भी लड़ने के लिये कहदूंगा।

श्रीदामा—अच्छा अगर काली नाग के जहर से कन्हैया के बजाय कन्हैया की लाश इस जल पर तैर कर आयी तब? क्या होगा?

बलदाऊ—तब? तब यह बलदाऊ कूद पड़ेगा। कन्हैया के शरीर में से जहर निकालकर उसे जीवन-दान देगा, और काली के फन को कुचल कर कन्हैया के कष्ट का उस से बदला लेगा।

[नन्द का आना]

नन्द—अरे कहां गया? इस नन्द का आनन्दकन्द वह कृष्णचन्द्र कहां गया? इस कालीदह में? इस विषधर सर्प के कुण्ड में? नन्द भी वहीं जायगा। काली को मारकर अपने कुमार को यहाँ लायगा। यदि ऐसा न कर सका तो अपने

प्राणाधार को अपने हृदय से लिपटा कर सदैव के लिये नहीं सोजायगा। उस समय तुम सब क्या करोगे ? सुन रहे हो बलराम ? सुन रहे हो श्रीदामा ?

कालिन्दी की रज से लिखना, इतना कालिन्दी के तट पै ।
है पिता पुत्र की यादगार, इस कालीदह के मरघट पै ॥

नारद—(प्रकट होकर) ठहरो, नन्द बाबा ठहरो :—

उचित नहीं है प्राण को खोना अपने आप ।
सब पापों से है बड़ा, आत्मघात का पाप ॥

नन्द—आप अब तक कहाँ थे महामुने ?

नारद—मैं कहाँ था—यह मत पूछो। यह पूछो कि गोपाल कहाँ हैं।

नन्द—कहां है ?

नारद—इस कालीदह के सब से निचले भाग में।

नन्द—सब से निचले भाग में क्या कर रहे हैं ?

नारद—युद्ध।

नन्द—युद्ध ? युद्ध कैसा ?

नारद—वह अभी मालूम होजायगा। सुनो, तैरना भी एक विद्या है। गोपाल ने यह विद्या अपने सब बालसखाओं को सिखायी है। परन्तु अभी तक उनकी बराबर किसी ने नहीं सीख

पायी है, इसलिये वे अकेले ही इस कुण्ड में गये हैं और पाताल-गोता लगाकर काली नाम वाले विषधर सर्प से युद्ध कर रहे हैं। इस प्रकार अपने व्रज-वासियों का संकट मिटायेंगे :—

अब तक कहलाते थे मोहन वन वन धेनु चरैया।
अब कहलायेंगे सब जग में फन पर नृत्य करैया॥

मनसुखा—तो क्या हमारे कन्हैया काली नाग के फन पर नाचते हुए आयेंगे?

नारद—हाँ, वह सारे संसार को दिखायेंगे कि नाचने की कला भी कितनी बड़ी कला है। संसारी लोग नाचते हैं भूमि पर, पानी पर, बताशों पर और आगों पर। परन्तु हमारे व्रजराज अभी नाचते हुए आयेंगे साँप के फन पर:—

मुरलीधर और वंशीधर थे अब तक कुंअर कन्हैया।
अब से घर घर कहलायेंगे, काली नाग नथैया॥

श्रीदामा—(सामने देखकर) लो वह यशोदा मैया भी आयीं।

(यशोदा का आना)

यशोदा—कहाँ है? कहां है? वह बूढ़ी आँखों का तारा, कहां है? वह मेरा दुलारा, बुढ़ापे का सहारा, मोर मुकट वंशी वाला, कहां है? :—

वह माखन का चाखनहारा, प्राणों का प्यारा कहां गया ।
मैया को भी पहुँचाउ वहीं, मैया का दुलारा जहाँ गया ।
मैं वरुण-लोक से, लड़ भिड़ कर, लाला को अपने लाऊँगी ।
अपने प्राणों को दे दूँगी, बदले में उसे छुड़ाऊँगी ॥

नारद—यशोदे, धीर धरो ।

यशोदा—हाय, जिस माता की गोद का इकलौता लाल यमुना की लहरों में जाकर सोगया है, उस से कहा जाता है "धीर धरो" । पत्थर का हृदय रखने वाले पुरुषो, तुम माता की छाती की पीड़ा को क्या समझ सकते हो :-

वह है जल में, उंशाल के लूके जलाते हैं यहाँ ।
नयन आँसू की जगह लोहू बहाते हैं यहाँ ॥
बीतते जितने भी क्षण हैं उस सलोने श्याम बिन ।
छेद उतने ही हृदय में होते जाते हैं यहाँ ॥

मैं तो मां हूं, मेरे कष्ट का इस समय ठिकाना ही नहीं है । परन्तु जरा उन ब्रजबालाओं की दशा अवलोकन करो, जो ब्रजविहारी के विशुद्ध प्रेम में पगी हुई हैं, और उसका कालीदह में कूदना सुनकर, व्याकुल हिरणियों की तरह, इधर भागी आरही हैं । (सामने देखकर) वह देखो, वृषभानु-कुमारी आयी । हाय कैसी बुरी दशा है !-

साड़ी सिर पर से उतरी है, सब देह गिरी सी जाती है ।
वृषभानुलली की सूरत में यह कोई वियागिनि आती है ॥

(विशाखा ललिता के साथ राधा का आना)

राधा - कहां है ? सारे ब्रज-मण्डल का शृङ्गार, कहां है ? सारे ब्रजवासियों का जीवनाधार कहाँ है ?

कहां है अपना मनमोहन मुरारी ?
कहाँ है अपना वृन्दावनविहारी ?
बिना उसके नहीं है चैन मन में,
लगी है आग सारे कुंजवन में ॥

ललिता—प्यारी, यशोदा मैया खड़ी हैं । नन्द बाबा खड़े हैं ।

विशाखा—इन की लाज करो ।

राधा—लाज ? अब किसकी ? लाज अब कहां की ? जब ब्रजराज ही नहीं तो लाज से क्या काज है ? छोड़ दो, मुझे छोड़ दो, मैं भी अब इसी यमुना में कूद जाऊँगी । और जहाँ वे यमुना-तट-विहारी गये हैं, वहीं उनके पास जाऊँगी :—

नाता जो हर्ष में था वही शोक में होगा ।
इस लोक में जो था वही परलोक में होगा ॥
ठाकुर जहां है होगी पुजारिन भी वहीं पर ।
राधा न अपने श्याम को छोड़ेगी कहीं पर ॥

नन्द—(नारद से) मुनिराज, आप तो कहते थे कि श्यामसुन्दर डूबे नहीं हैं, गोता लगाया है, अभी आयेंगे। अब तो बड़ी देर हो गयी। कब आयेंगे ?

नारद—हां, मैं फिर कहता हूं कि वे डूबे नहीं है, गोता लगा गये हैं, अभी आयेंगे (यमुना की तरफ देख कर) ब्रजवल्लभ ! अब नहीं देखा जाता है। यह करुणा का दृश्य अब नहीं देखा जाता है। तुमने गोता लगाया है, इस बात का विश्वास भी, अब इन सबके हृदय से उठता जाता है। इसलिये शीघ्र प्रकट हो जाओ। नहीं तो आज सारा ब्रजधाम, इसी काली-दह में कूद कर परम धाम पहुँच जायगा।

मैया पुकारती है मेरा लाल कहाँ है।
गौएं पुकारती हैं कि गोपाल कहाँ है ॥
अत्यन्त शीघ्र अब दरस दिखलाओ सांवरे।
आँखों में दम नहीं रहा अब आओ सांवरे ॥

[कालीनाग की फुंकार से काले होकर काली को नचाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण का प्रकट होना]

सब—बोलो श्रीकृष्णचन्द्र महाराज की जय।

—०—

"स्थान—ब्रज बन"

[इन्द्र का प्रवेश]

इन्द्र—सावधान-ब्रजवासियो-सावधान। तुम कहाँ बहक रहे हो? एक बंशी वाले बालक के कहने में आकर मेरी पूजा छोड़कर गोवर्द्धन पहाड़ की पूजा करने चले हो? आओ-मेरी ओर आओ, मुझे पहचानो-मैं कौन हूं? स्वर्ग का राजा-वर्षा का स्वामी-देवताओं का पति-देवराज इन्द्रदेव। मेरे ही कारण यह हरे हरे वन, उपवन, शोभा पा रहे हैं। मेरी हो कृपा से चारों ओर यह खेत लहलहा रहे हैं। मैं न होऊँ तो इस ब्रज-मण्डल की यह हरी हरी घासें, जिन्हें चर कर गायें तुम्हें दूध और माखन खिलाया करती हैं, सूख जायें। यह कन्द, मूल. फल और अन्न आदि उपजने ही न पायें। इसी से लोग मुझे मानते हैं। इसीलिए हर साल चातुर्मास की समाप्ति पर-गाँव गाँव में-लोग मेरी पूजा किया करते हैं। पर आज? आज क्या

हो रहा है ? मेरे स्थान पर गोवर्द्धन के पत्थरों और तुनकों को पूजा जा रहा है ? इतना अपमान ? इतना तिरस्कार ? किसका ? वृत्रासुरजयी, वज्रायुध, यज्ञों के अधिष्ठाता-भगवान् इन्द्रदेव का ? ठहर जाओ, नन्द-नन्दन के बताये हुए मार्ग पर चलने वाले ब्रजवासियो, इन्द्र-तुम्हें आज अपनी शक्ति का परिचय देने के लिये तैयार है। इन्द्र-तुम्हें आज अपने कोप का लक्ष्य बना डालने को तैयार है :—

अमर-पति के अनादर का, बुरा फल आज ही होगा !
न खेती ही रहेगी और न पैदा नाज ही होगा ॥
घटायें वह प्रलय की छायँगी इस ब्रज के मण्डल पर ।
न ब्रज होगा न ब्रजवासी, न वह ब्रजराज ही होगा ॥

[इन्द्र का जाना, श्रीकृष्ण का आना]

श्रीकृष्ण—ठहरो, इन्द्रदेव ठहरो। तुम अपनी पूजा में रुकावट पड़ने के कारण जितने आपे से बाहर हुए हो—उतना आपे से बाहर होना, एक क्षमतावान् देवता की प्रतिष्ठा में बट्टा लगाने वाला कार्य्य है। अपने आप संसार से अपनी पूजा कराने की इच्छा रखना, देवता कहलाने वाले व्यक्ति के लिये देवपद से गिर जाने की बात है। मतवाले देवराज, स्वर्ग के सुख भोग के कारण, अप्सराओं द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले राग रंग के उपभोग के कारण-तुम्हारे हृदय के उदार विचार मर चुके हैं।

उन्हें फिर यह नन्दनन्दन जिलाना चाहता है। यह वंशीवाला ब्रजविहारी—संसार की बुराइयाँ दूर करने के साथ ही साथ तुम जैसे देवता का दर्प भी मिटाना चाहता है। जगत का पालनकर्त्ता होने का घमंड—किसे ? तुम्हें ? तुम्हें यह शक्ति किसने दी है ? कहाँ से मिली है ? जानते हो, जिसने तुम्हें यह शक्ति दी है—आज वही शक्तिधर अपनी शक्ति तुम से छीन ले तो तुम्हारा क्या हाल होगा ?—कुछ समझते हो ? प्रलय ही की नहीं—महाप्रलय की घटाएँ बनकर तुम स्वयं ब्रज पर छा जाओ—तो भी मेरे इस ब्रज को हानि नहीं पहुँच सकती है। अकाल, अतिवृष्टि, महामारी आदि कोई भी बाधा—इस ब्रजविहारी के होते—इसके ब्रज को बर्बाद नहीं कर सकती है—

ब्रजवासी और ब्रजराज सभी ब्रज में आनन्द उड़ायेंगे।
हाँ—रार बढ़ी तो स्वर्ग और सुरराज न रहने पायेंगे॥
आवश्यकता पर छन उँगली का बल इतना बढ़ जायेगा।
वंशी धारण करनेवाला, गिरिवरधारी कहलायेगा॥

(गायन नं० १७)

मुझे यह ब्रज बैकुण्ठ समान।
ब्रज का नेह नहीं छूटेगा, मां जसुधा की आन॥
क्षीर सिन्धु सम प्रिय है, यह कालिन्दी का जल नील।

सुखद शेषशैय्यावत्, ब्रज का कांटेदार करील ॥
निछावर इस पर देवोद्यान ॥
उधर शक्ति थी रमा, इधर राधा बरसाने वाली ॥
पीताम्बर सम प्यारी मुझको यहां कमलिया काली ॥
देव-पट इसके आगे म्लान ॥

—०—

(भगवान् श्रीकृष्ण का जाना, नारद का आना]

नारद—सिधारिये श्यामसुन्दर, आज वही लीला कीजिये जिस से सारा संसार आपको महाशक्ति को जान जाये । सारे चरित्रों में कुछ चरित्र ऐसे भी होने चाहिये-जिससे आनेवाला युग-अहने महाप्रभु को पहचानने में चक्कर न खाये ।

(गायन नं० ६)

उठाओ गोवर्द्धन गोपाल ।
अब तक छुपे रहे हो वंशी के तुम स्वरों में ।
ग्वालों की कमलियों में, गइयों के माखनों में ॥
अब इन्द्र-दर्प दल कर, गिरवर को नखपै धरकर ।
होजाइये प्रकट हरि, भूतल निवासियों में ॥
गोमाता की शक्ति दिखाओ, गोपवंश का मान बढ़ाओ ।
गर्वीले का गर्व मिटाओ परिचय दो तत्काल ॥
(नारद का जाना)

—०—
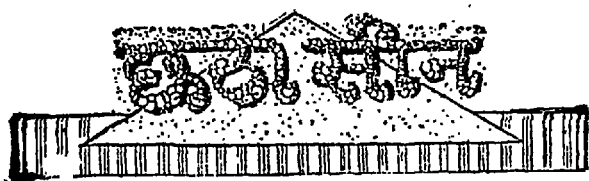
स्थान—"गिरि-गोवर्द्धन"

[गोवर्द्धन पूजा को आये हुए नन्द, बलदाऊ, यशोदा, राधा, ललिता, विशाखा, आदि ब्रज-बालायें और मनसुखा, श्रीदामा, विशाल आदि, ग्वाले उपस्थित हैं। एक ओर भगवान् श्यामसुन्दर और नारद भी खड़े हुए हैं। घटायें घिरी हुई हैं। बिजली चमक रही है। गायें और बछड़े भी हैं]

—०—

(गायन नं० १६)

—:○:०:○:—

सब ब्रजवासी—

सांवरिया कमरी तान, ब्रज पै कारे बादर घिर आये।
बह जाय न अपनी छान, ब्रज पै कारे बादर घिर आये॥
प्रलयदिवसकी उठी बदरिया, कालनिशाको घिरी अँधरिया
दिन भयो रैन समान, ब्रज पै कारे बादर घिर आये॥
कोप उठ्यो देवन को राजा, रह्यो बजाय जुझाऊ बाजा।
होयगो का भगवान्, ब्रज पै कारे बादर घिर आये॥

—०—

श्रीदामा—भैया कन्हैया, यह तुम्हारे ही उत्पन्न किये हुए उत्पात हैं। यदि तुम इन्द्र भगवान् की पूजा न छुड़वाते—तो आज ब्रज-मंडल पर इतने भयानक और घोर घन घिर कर न आते।

श्रीकृष्ण—यह ठीक है, परन्तु मैंने जो कुछ किया है वह उचित ही किया है।

श्रीदामा—यह कैसे ?

श्रीकृष्ण—यह ऐसे कि तुम लोग इन्द्र की पूजा करके-उसे एक प्रकार की घूस देते थे—कि वह यह घूस लेकर हर साल जल बरसाय। भला सोचो तो सही—जहाँ जल नहीं बरसता है उन देशों का काम क्या नहीं चला करता है ?

श्रीदामा—उन देशों के लोग खेती न करके कोई दूसरा धन्धा करते होंगे।

श्रीकृष्ण—तो तुम्हारी राय में खेती के लिये वर्षा ही प्रधान चीज है ? नहीं—वर्षा से भी प्रधान चीज गौ है, और गौ के जाये यह बछड़े हैं। वर्षा नहीं होगी—तो हम कुएँ खोद कर पाताल से जल ले आयेंगे, और इन बछड़ों से वह जल खिचवाकर खेतों को सिचवायेंगे। इसीलिए मैं इन्द्र की पूजा छुड़वाकर—गोवर्द्धन की पूजा करवा रहा हूं। गोवर्द्धन का अर्थ ही यह है कि 'गोवर्द्धन', गो—वंश की वृद्धि।

विशाल—इस गोवर्द्धन पहाड़ पर भी क्या कुएँ खोदकर सिचाई की जायगी ? यदि वहाँ तरी न पहुँचाई जायगी, तो गइयों के लिये हरी हरी घास कैसे उग पायगी ।

श्रीकृष्ण—उसका भी साधन यही गोवर्द्धन-पूजा है ।

विशाल—यह कैसे ?

श्रीकृष्ण—यह ऐसे कि यदि आवश्यकता हुई तो इस पूजन को प्रतिमास कराया करेंगे ! प्रतिमास पूजन के समय-अर्घ्य देने के लिये हर एक ब्रजवासी जल का एक एक कलश जब इस गिरिवर के शिखर पर चढ़ाता रहेगा तो लाखों कलश चढ़ते रहने पर, इस पहाड़ में इतनी तरी आजायगी कि वह हरी हरी घास से अपने आप लहलहाता रहेगा ।

मनसुखा—अजी यह बातें तो उस समय होनी चाहिए जब सूखा पड़ रहा हो ? हम तो देखते हैं गोवर्द्धन पूजन करने पर भी इन्द्रदेव परम प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं । तभी तो बिजली चमका कर हमारे कन्हैया का दर्शन करते हैं-और बादलों को गरजाकर इनकी जय बोलते हैं ?

नारद—मनसुखा जी, यह कृपा के नहीं, कोप के बादल हैं । ब्रज को सुख पहुँचाने के लिए नहीं छाये हैं, वहा देने के लिये आरहे हैं ।

मनसुखा—कोप ? कौन करेगा ? इन्द्र ? किस पर ? ब्रज पर ? आहाहाहाहाहा, वह यदि ब्रज को बहाना चाहेगा तो हमारे गोपाल उसके कोप को बहा देंगे। वह यदि सुरेन्द्र है--तो गोपाल ब्रजेन्द्र हैं। उसे अगर सुरा का नशा है तो गोपाल को गोरस का नशा है।

नन्द—चुप रहो, यह ठठोली का समय नहीं है।

मनसुखा—ठठोली नहीं कर रहा हूं बाबा—यदि घनश्याम से घनश्याम का युद्ध छिड़ेगा, तो यह मनसुखा नाम का ग्वाला भी—ऊपर को हाथ उठाकर एक ऐसी लाठी चलाएगा, जिससे इन्द्र भगवान् का वज्र भी पानी पानी होकर बह जायगा।

श्रीकृष्ण—हाँ, तुम्हारी लाठियों से ही आज यह रण-खेत जीता जायगा। जाओ, सब ग्वाल बाल अपनी अपनी लाठियाँ ले आओ।

(सब का जाना)

नन्द—अरे कान्हा ! यह क्या लड़कपन कर रहा है ? लाठियों से कहीं इन्द्र जीता जा सकता है ?

श्रीकृष्ण—हाँ जीता जा सकता है। आप देखते रहें बाबा।

(बिजली का चमकना, बादल का गरजना)

यशोदा—लो फिर बिजली चमकी—फिर बादल गरजा। वर्षा आरम्भ होगयी तो गोवर्द्धन की पूजा कैसे हो सकेगी ? मेरे

लाला तूने यह क्या कौतुक रचा डाला है ? कहां वह सुरों का राजा इन्द्र-और कहाँ हम ग्वाल बाल ? कहां उस का वज्र-और कहाँ तेरी कोमल वंशी ?

श्रीकृष्ण—मैया, तुम धीर धरे रहो। मैं आज इन्द्र ही को परास्त करूँगा:—

मुझे सौगन्द बाबा की, मुझे है आन मैया की।
मैं जिसका दूध पीता हूँ, शपथ उस प्यारी गैया की॥
अभी अभिमान क्षण में, इन्द्र राजा का मिटाऊंगा।
कराऊँगा तो गोवर्द्धन का पूजन ही कराऊँगा॥

(वर्षा होने लगती है)

नन्द—लो, वर्षा होने लगी !

(ग्वालों का लाठियां लेकर आना)

श्रीकृष्ण—तो ग्वाले भी लाठियाँ लेकर आगये।

नन्द—हम सब अब कहां जायेंगे ? गौएँ अब कहां रहेंगी ?

श्रीकृष्ण—आप सब इस पहाड़ के नीचे होजाइये।

यशोदा—हैं, पहाड़ के नीचे ?

श्रीकृष्ण,—हाँ, पहाड़ के नीचे-दाऊ, मनसुखा, श्रीदामा, विशाल, सुबल, ऋषभ, तुम सब अपनी अपनी लाठियों से इस पहाड़ को उठाओ।

नन्द—गोपाल, तू तो खेल करता है। लाठियों से कहीं पहाड़ उठ सकता है ?

श्रीकृष्ण—क्यों नहीं उठ सकता है ? एक छोटे से अंकुश से हाथी वश में आता है। एक छोटा सा दीपक सारे घर में प्रकाश पहुँचाता है। एक एक ईंट लगाते रहो तो कुछ दिनों में एक बड़ा महल बन जाता है।

नन्द—तुझे उल्टी ही सूझती है !

श्रीकृष्ण—इसमें उल्टी क्या है बाबा ? तुम सब के साथ इधर आ तो जाओ। दाऊ, तुम इधर आओ। मनसुखा, तुम उधर जाओ। श्रीदामा और विशाल, तुम अपनी अपनी लाठियाँ यहां लगाओ, सुबल और ऋषभ तुम वहाँ पहुंच जाओ। उठाओ, पहाड़ उठाओ, मैं भी सहारा लगाता हूँ। (राधा की ओर देखकर) राधे !

राधा—श्याम !

(श्रीकृष्ण भगवान् का छुन उँगली के बल पर गोवर्द्धन उठाना, सब का उसके नीचे आजाना, इन्द्र का आकर भगवान् के चरणों पर गिरना)

इन्द्र—त्राहि माम् ! त्राहि माम् !!

नारद—बोलो श्री कृष्णचन्द्र महाराज की जय।

—०—

स्थान—"कंस का भवन"

(कंस का मुष्टिक, चाणूर, अक्रूर आदि के साथ प्रवेश)

कंस—तुम्हें याद है अक्रूर, तुम मेरी एक आज्ञा पालन करने के लिए ऋणी हो।

अक्रूर—हाँ-महाराज ऋणी हूँ।

कंस—तो मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि जैसे भी हो, उस नन्दलाल को मेरे सामने लाओ।

अक्रूर—पर नन्द अपने लाल को यहाँ कैसे भेज देंगे?

कंस—क्यों?

अक्रूर—यों कि वह उनके प्राणों का प्यारा है। कोई भी बाप शत्रुता के दिनों में अपने प्राणों से प्यारे बेटे को अपने शत्रु के पास कैसे भेज देगा?

कंस—भोले भाले अक्रूर, तुम यह जानते हो कि मैं कौन हूँ?

अक्रूर— जानता हूं, आप राजा हैं।

कंस—और नन्द कौन है ?

अक्रूर—एक छोटा जमींदार ।

कंस—अच्छा, तो एक छोटा सा जमींदार राजा के सामने कितना बल रखता है ?

अक्रूर—उतना ही जितना कि बिल्ली के सामने चूहा, भेड़िये के सामने बिल्ली का बच्चा । परन्तु—महाराज—

कंस—हाँ, हाँ, कहो।

अक्रूर—एक बाप अपने बेटे की रक्षा के लिए बहुत ज्यादा बल रखता है।

कंस—वह कितना ज्यादा बल ?

अक्रूर—जितना बल नदियों के प्रवाह को रोकने वाले बड़े बाँधों में रहता है, जितना बल घटाटोप बादलों को उड़ा देनेवाले वायु के प्रचण्ड झोंकों में रहता है :—

बाप का सर्वस्व उसका प्राण प्यारा लाल है।
उसके तन का हर रुआं बेटे की खातिर ढाल है॥
आ नहीं सकती है वह जो चीज है हुक्काम की।
प्राण के पर्दे में रखता है वह मूरत श्याम को॥

कंस—अरे, वसुदेव ने तो मेरे जरा से इशारे पर अपनी आठ सन्तानें मुझे दे डालीं थीं, नन्द क्या एक पुत्र भी नहीं देगा ?

अक्रूर—हां, नहीं देगा। वह वसुदेव की तरह दुर्बल, भीरु और आपकी अनुचित आज्ञा पालन करनेवाले पुरुषों में नहीं :—

तुम अगर मथुरा का उसको राज दो और ताज दो।
फिर कहो इतना कि "बदले हमें ब्रजराज दो"॥
तब भी उत्तर उसका यह होगा कि "अस्वीकार है।
विश्व भर का राज मेरे लाल पर बलिहार है"॥

कंस—तो मिटा दो, उसके साथ साथ उसके घर बार को भी सदैव के लिए मिटा दो। सेना को आज्ञा दो कि रण-भेरी बजायी जाय और शत्रुओं पर चढ़ाई की जाय। नन्द और उसके लाल के सहित-तमाम गोप-कुमारों को-भालों की नोकों पर उठा-कर-खड्ग के प्रहारों से खण्ड खण्ड कर दिया जाय। उनके ग्रामों को फूंक दिया जाय। उनकी स्त्रियों को जला दिया जाय। उनके बच्चों को दीवारों में चुनवा दिया जाय। उनकी गैयों को यमुना में बहा दिया जाय :—

उलट दो सारा वृन्दावन सुनो मत उसके भक्तों की।
बला से आज यमुना दूसरी बह जाय रक्तों की॥
मिटेंगे वृक्ष, पक्षी कीट तक जिस वक्त ब्रज-वन के।
तभी अरमान पूरे होंवगे, मथुरेश के मन के॥

(जाना चाहता है, नारद मुनि आजाते हैं)

नारद—नारायण; नारायण।

अक्रूर—पधारिये-देवर्षे।

नारद—(अक्रूर से) कहिये-क्या हो रहा है? (कंस से) मथुरेश, क्या गोपकुमारों पर चढ़ाई करने का प्रबन्ध किया जा रहा है?

कंस—हां-अब वही करूँगा।

नारद—नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं है।

कंस—क्यों?

नारद—यों कि आपकी आधी प्रजा तो पहले ही से गोपकुमारों में जाकर बस गयी है। अब यह चढ़ाई की आज्ञा सुनते ही-रही सही भी वहीं पहुंच जायगी। गोपकुमारों के गांव तो नहीं उजड़ेंगे, यह मथुरा उजड़ जायगी। फिर राज किस पर कीजिएगा? राज-कर किससे लीजिएगा?

कंस—तो क्या करूँ? उस नन्द के कुमार को किस प्रकार समाप्त करूँ?

नारद—मैं जो कहूं वह करो। मथुरा में एक उत्सव रचाओ; और उसके बहाने निमन्त्रण भेजकर गोपाल और नन्द सहित उस नन्द के कुमार को भी इसी जगह बुलवाओ। फिर छल से या बल से उस पर विजय पाओ।

कंस—बात तो ठीक है। पर उन्हें बुलाने कौन जायगा?

नारद—यही अक्रूर जी जायेंगे और सबको बुला लायेंगे। सुनिये अक्रूर जी–(अलग लेजाकर) अब वह उपाय करो कि सांप मर जाय और लाठी भी टूटने न पाय। अब तक तो मैं भी अत्याचार के बढ़ाने के पक्ष में था, पर अब मेरी राय है कि वह बढ़ने न पाय। यह दुष्ट अगर सेना लेकर गोपकुमारों पर चढ़ जायगा तो व्यर्थ बहुत सा जन-संहार होजायगा। इसलिए यही उचित है कि भगवा् को यहां बुला लाइये, और इस दुष्ट को समाप्त कराइये, (प्रकट) समझ गये अक्रूर जी ?

कंस—समझा दिया ?

नारद—हां महाराज, समझा दिया–कि वे तुम्हारे ही जाने से आयेंगे, दूसरा कोई बुलाने जायगा तो भय खायेंगे, शङ्का लायेंगे।

कंस— क्यों अक्रूर जी, जाओगे ?

अक्रूर—हां महाराज जाऊँगा। आप से जो एक वचन का ऋणी हुआ हूँ वह चुकाऊंगा (स्वगत) :—

निरन्तर यत्न करके भी न योगी जिनको पाते हैं।
सदा ही नेति कहकर वेद जिनका गान गाते हैं॥
हूं बड़भागी कि जाता हूं मैं द्वारे उन अगोचर के।
इसी हीले से दर्शन पाऊंगा मुरलीमनोहर के॥

(जाना)

कंस—देवर्षे ! आपने अच्छी युक्ति बताई (साथियों से) चलो, उत्सव की तैयारी प्रारम्भ की जाय।

नारद—हां, सिधारिए मथुरेश-और उत्सव की तैयारियाँ कीजिए।

कंस—

लग चुका कम्पा, कहाँ जायेगा पक्षी डाल का।
आ रहा है अब तो घर बैठे ही भोजन काल का॥

(कंस का साथियों सहित जाना

नारद—अहाहाहाहाहा-चल गयी, अन्तिम चाल भी चल गयी। इसी नीति से भगवान् को यहां बुलाना है, और इस दुष्ट कंस का वध कराके, वसुदेव देवकी को कारागार से छुड़ा के, उग्रसेन को राज दिला के-इस नाटक को समाप्त कराना है :-

खेल खिलाड़ी ने यहाँ खेले विविध प्रकार।
अब वह होगा-जिस लिए हुआ कृष्ण अवतार॥

(गायन नं० २०)

कीजिये अब जग का उद्धार।

यदु-कुल-तिलक,ललाम,श्याम,करुणानिधि,करुणागार।
अन्धकार में है मति सबकी, समझ पड़े नहीं सार॥
दिव्य ज्ञान—दीपक की करिए, प्रचुर प्रभा—विस्तार।
झिंझरी नैया है भक्तों की, डूब रही मँझधार॥
शीघ्र कृपा बल्ली से इसको, करिये पल्ली पार॥

(जाना)

स्थान—"वृन्दावन"

(भगवान् श्रीकृष्ण खड़े हैं। राधाजी उनके चरणों के पास बैठी हैं और उनका मुखारविन्द निहार रही हैं)

श्रीकृष्ण—महाशक्ति !

राधा—महाप्रभु !

श्रीकृष्ण—मैंने तुम से जितनी शक्ति अब तक प्राप्त की थी-उसका बहुत सा भाग-असुरों के मारने में, काली नाग नाथने में, गोवर्द्धन धारण करने में, व्यय होगया। अब आज ऐसी अतुल शक्ति प्रदान करो-जिस से जीवन भर शक्तिवान् बना रहूँ।

राधा—आप तो स्वतः महाशक्तिवान् हैं प्रभो, यह क्या कह रहे हैं ?

श्रीकृष्ण—ठीक कह रहा हूँ। शीघ्र ही मुझे कंस को मारने के लिये महान् शक्ति चाहिए, वह तुम्हीं से तो प्राप्त होगी

महामाये ! कंस को मारने के उपरान्त भी-मुझे अपने इस जीवन काल में-बहुत से बड़े बड़े कार्य करना हैं। उनके लिये अभी से, इस ब्रजबिहारी के समय ही से-स्पष्ट शब्दों में-तुम्हारे पास ही से-उस महाशक्ति का संग्रह कर लेना है जिसका कभी अन्त न हो। मेरे इस जीवन की लीला का अन्त होजाय पर उसका अन्त न हो।

राधा—आज तो आप बहुत ही गहरे विज्ञान की बातें कर रहे हैं ? संसार-वासी यह बातें नहीं समझ सकेंगे।

श्रीकृष्ण—न समझें। आज की लीला में मुझे संसार-वासियों को कुछ नहीं समझाना है। आज तो मुझे अपना बल बढ़ाना है। देखो, यह शरद् पूर्णमासी की रात्रि मेरी वह प्यारी रात्रि है-जिसमें कात्यायनी व्रत के समय गोपियों को दिए हुए वचन के अनुसार-मैं रासलीला रचाऊँगा। तुम्हें तो बुला ही चुका हूं, अब वंशी बजाकर अन्य ब्रजबालाओं को भी बुलाऊँगा और इस प्रकार अपनी शक्ति बढ़ाऊँगा।

राधा—तो आज क्या महानृत्य होगा ?

श्रीकृष्ण—हां, महानृत्य होगा। आज गोपियाँ भी नाचेंगी, गोपीवल्लभ भी नाचेगा, यमुना की लहरें भी नाचेंगी, चन्द्र भी नाचेगा, वायु भी नाचेगी, आकाश भी नाचेगा। सारी सृष्टि

जब नाच रही होगी—तो उसके ऊपर तुम नाचेगी और मैं नाचूंगा। समझ गयीं प्राणवल्लभे ?

राधा—कुतर्कवादी कहीं इस चरित्र पर कुतर्क न करने लगजायें ?

श्रीकृष्ण—करने दो। उन्हें क्या मालूम कि यह व्रज लल-नायें कौन हैं ? यह तो मैं जानता हूँ कि यह सब वेद की श्रुतियाँ हैं। तुम मेरी महा शक्ति हो और यह सब शक्तियां हैं। इसलिए अपनी इन सब शक्तियों को आज एकत्र करके मुझे अपनी शक्ति बढ़ाने दो-ऐसे महत्व के अवसर पर कोई शङ्का हृदय में न आने दो—रास रचाने दो। क्योंकि मेरे व्रजविहार की लीलाओं मे यही मेरी अन्तिम लीला है। इसके उपरान्त मैं तुम्हें तो व्रजभूमि पर ही रहने दूँगा, और स्वयं सारे संसार का उद्धार करने के लिये दूसरे स्थान पर गमन करूंगा।

राधा—तो क्या मुझे आप दूसरे स्थान पर अपने साथ नहीं रक्खेंगे ?

श्रीकृष्ण—नहीं।

राधा—यह क्यों ?

श्रीकृष्ण—यह यों कि इष्ट मूर्ति का एक ही स्थान पर रहना ठीक है। तुम्हारे यहाँ रहने पर व्रजधाम मेरा उपासना-धाम बना रहेगा। ऐसी लीलाओं के प्रेमियों ही के लिये नहीं-मेरे लिये भी-

उस अवस्था में यह वृन्दावन, एक महामन्दिर—एक महा तीर्थ की तरह पूजनीय रहेगा।

राधा—पर मैं तो आप से पृथक् हो जाऊंगी ?

श्रीकृष्ण—तुम और मुझसे पृथक् ? कभी नहीं हो सकतीं। क्षीरसागर से साथ आनेवाली महादेवी, कहाँ बहक रही हो ? तुम कभी मुझ से पृथक् हो सकती हो ? हमारे और तुम्हारे नाते को तो हमी तुम अच्छी तरह समझते हैं, संसारी जीव इस रहस्य तक नहीं पहुँच सकते हैं। अच्छा, अब आज्ञा दो ब्रजरानी, कि मैं यह लीला रचाऊं। वंशी बजाऊँ और ब्रज-वालाओं को बुलाऊँ।

राधा—जैसी मेरे प्रभु की इच्छा।

श्रीकृष्ण—(वंशी को ऊपर उठाकर)

वह रहा है नीर यमुना का उधर सद्भाव से।
चांदनी जग को इधर नहला रही अति चाव से॥
पत्ते पत्ते से बरसती हैं फुआरें प्रेम की।
इस समय वंशी सुना तू भी पुकारें प्रेम की॥

[वंशी बजाना एक ब्रजवाला का आना]

पहिली ब्रजबाला—

आज तो वंशी के स्वर, अनहद से भी बढ़कर हुए।
अब से वंशीधर न वंशीधर हैं—योगेश्वर हुए॥

(फिर वंशी बजाने पर दूसरी ब्रजबाला का आना)

दूसरी ब्रजबाला—

आज की वंशी ने गोपीमात्र को भरमा लिया।
कृष्ण वंशीधर ने गोपीनाथ का पद पा लिया॥

(फिर वंशी बजाने पर तीसरी ब्रजबाला का आना)

तीसरी ब्रजबाला—

अब न यह वंशी चुपेगी जय जगत पर पागयी!
चर अचर के जीतने की शक्ति इसमें आगयी॥

[फिर वंशी बजाने पर चौथी ब्रजबाला का आना]

चौथी ब्रजबाला—

आज की वंशी में त्रिभुवन के विजय की शक्ति है।
क्या पता—उत्पत्ति की है, या प्रलय की शक्ति है॥

[फिर वंशी बजाने पर ललिता का आना]

ललिता—

चन्द्रमा चाल भूला अपनी, तारों में थिरता आयी है।
बज रही है वह वैरिन वंशी, कालिन्दी भी ठहरायी है॥

[फिर वंशी बजाने पर विशाखा का आना]

विशाखा—

आगया वसन्त शरद् ऋतु में सब ओर छटा वह छायी है।
बज रही न यह प्यारी वंशी, जगमें जागृति सी आयी है॥

ललिता—किधर हो? किधर हो? वंशी बजाने वाले मनमोहन, तुम किधर हो?

विशाखा—मैं तो देह गेह सब को सुध भूल गयो। ले चल सखी, मुझे उस मुरलीमनोहर के पास ले चल।

ललिता—यह तू अपनी बात कह रही है या मेरी? यही बात तो मैं तुझ से कहने वाली थी।

विशाखा—चलो, उस चितचोर को चारो ओर ढूँढें।

श्रीकृष्ण—(सामने आकर) गोपियो, कहाँ जारही हो? किस को ढूंढ रही हो?

ललिता—अपने मनमोहन को—वंशी बजाने वाले-उस ब्रजनन्दन को।

श्रीकृष्ण—वह ब्रजनन्दन तो मैं ही हूं।

ललिता—हैं! तुम ही हो? हाय, मैं इतनी बेसुध हो गयी!

श्रीकृष्ण—मुझे भी आश्चर्य है कि तुम सब की आज कैसी दशा है? तुम्हारे माथे पर बेंदो नहीं है। विशाखा को एक आंख में काजल नहीं है। चन्द्रावली के सिर पर साड़ी नहीं है। मनोरमा के एक हाथ में कंगन नहीं है।

विशाखा—हम से पूछ रहे हो माधव-कि हमारी कैसी दशा है? तुम्हीं ने तो वंशी बजा बजाकर हमारी यह दशा की है और तुम्हीं हम से इस दशा का कारण मालूम करना चाहते हो? तुम्हारी वंशी आज नहीं बजी है—सारे ब्रजमण्डल पर एक आकर्षण शक्ति पहुंच गयी है :—

एक उठ दौरी, एक भूल गयी पौरी,
एक बौरी भई, कौरी भरी कदम्ब की डाल की ।
एक खुले वार, एक भूषण बिसार,
एक छोड़ के सिंगार, चली भूल सुधि माल की ।
एक भाजी कुञ्जन में, एक धायी घाटन में,
एक फिरी कानन में दशा थी बेहाल की ।
सारी ब्रजबाल कठपूतरी सी नाच रहीं,
ऐसी आज बाँसुरी बजी है नन्दलाल की ।

ललिता—

बाजी उमगायीं बाजी द्वार खोल धायीं,
बाजी मारग भुलायीं, बाजी व्याकुल आँगन में ।
बाजी ने बिसारी धीर, बाजी ने है फाड़ो चीर,
बाजिन के उठी पीर चैन है न मन में ।
बाजी घर छोड़ भाजीं, बाजी वर छोड़ भाजीं,
बाजी डर छोड़ भाजीं व्याध लगी तन में ।
बाजी कहें बाजी, बाजी बाजी कहें—कहाँ बाजी ?
बाजी कहें बांसुरी बजी है वृन्दावन में ।

श्रीकृष्ण—अरे तो एक बाँसुरी की तान से तुम सब इतनी बेध्यान और अज्ञान होगयीं कि अर्द्ध-रात्रि के समय इस प्रकार दौड़ी आयीं ?

विशाखा—लो, आप ही तो बाँसुरी बजा बजा कर यहाँ बुलाते हैं और आप ही अब कटे पर लोन लगाते हैं।

श्रीकृष्ण—मैं ठीक कहता हूँ। तुम्हारा इस प्रकार पर-पुरुष के पास आना अनुचित है।

ललिता—पुरुष? पुरुष? तुम्हें पुरुष कहता ही कौन है? तुम तो अभी आठ वर्ष के बालक हो।

राधा—बिहारी जी, यह चोचले की बातें अब रहने दो, और वंशी की जिस तान से व्रज-बालायें व्याकुल हुई हैं, वही तान फिर सुनाओ।

ललिता—हाँ, अपनी वंशी फिर बजाओ।

श्रीकृष्ण—मैं तो इसके लिये तैयार हूं। पर तुम्हें भी मेरी एक बात माननी होगी?

विशाखा—वह क्या?

श्रीकृष्ण—मैं वंशी बजाऊँ और तुम सब नाचो।

ललिता—पर तुम्हें भी तो नाचना होगा।

श्रीकृष्ण—हाँ, मैं भी नाचूंगा।

विशाखा—किसके साथ नाचोगे? मेरे साथ नाचना।

ललिता—नहीं, मेरे साथ नाचना।

श्रीकृष्ण—नहीं-मैं वृपभानुकुमारी के साथ नाचूंगा।

विशाखा—मेरे साथ नहीं नाचोगे?

ललिता—मेरे साथ नहीं नाचोगे ?

श्रीकृष्ण—अच्छा मुझे छोड़ दो, मैं सबके साथ नाचूंगा।

सभी गोपियों की मुझे रखना है अब टेक।
रास रचाता हूं स्वयं धर कर रूप अनेक॥

[अनेक कृष्ण प्रकट होकर अनेक गोपियों के साथ नृत्य करते हैं]

(गायन नं० २१)

सब—

करत वृन्दावन रास, रसिकवर।
तक थिलँग तक थुंजे थुंजे।
क्राणधा,क्राणधा,क्राणधा, तक थुंजे।
निरतत मिलकर, नागरि—नागर।
करत वृन्दावन रास रसिकवर।
सुखद शरद् रजनी अति सुन्हर।
छिटक रही चन्द्रिका मनोहर॥
कालिन्दी—कल—कलित कूल पर।
एक एक गोपी एक एक नटवर॥
नचत परस्पर विहँस विहँस कर।
करत वृन्दावन रास रसिकवर॥
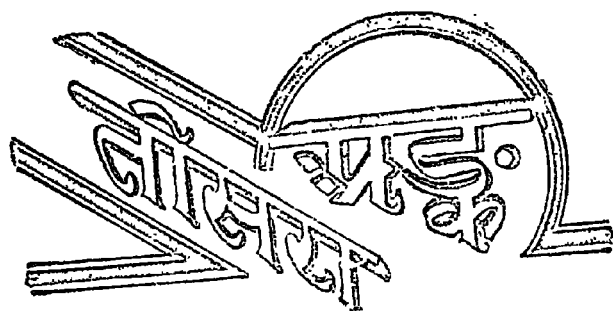
श्रवणकुमार

इस नाटक का मूल्य ।।।)

स्थान—"नन्दराय का गृह"

(अक्रूर के साथ नन्दराय का बातें करते हुए आना)

नन्द—मथुरेश ने आपको भेजा है ?

अक्रूर—हाँ, मथुरेश ने भेजा है। उन्हों ने मथुरा में एक बहुत बड़ा उत्सव रचाया है-जिसमें सम्मिलित होने के लिये घनश्याम और बलराम सहित-आपको बुलाया है।

नन्द—उस उत्सव में क्या होगा ?

अक्रूर—बड़े बड़े राजा और पहलवान एकत्र होंगे, धनुष-यज्ञ होगा, वीरता के खेल होंगे, और अखाड़े होंगे।

नन्द—तो मैं क्या उन अखाड़ों में कुश्ती लड़ूंगा ? अक्रूर, तुम राजा के समीपवर्ती हो-इस कारण तुम्हारी आंखों में दिन रात वे अखाड़े-वे खेल तमाशे, वे रंगशालायें-और उपाधि के भूखे लोगों की नजरें और भेंटें घूमा करती हैं। मुझ गोसेवक के लिये उसमें क्या प्रयोजन ?

अक्रूर—नन्द, अक्रूर राजा के उन चाटुकार सहयोगियों में नहीं है-जो राजा की एक उँगली के इशारे पर-धर्म्म अधर्म्म का बिचार न करके-नाचने लगते हैं। राजा को प्रसन्न रखने के अभिप्राय से नीच से नीच काम करने के लिये तैयार रहते हैं। मैं तो विश्वास दिलाता हूं, शपथपूर्वक जताता हूं कि वहाँ चलने में तुम्हारा कोई अहित नहीं होगा। उनकी आज्ञा का पालन हो जायगा-मेरे आने की लाज रह जायगी-और भगवान् ने चाहा तो तुम्हें बहुत बड़ा सम्मान प्राप्त हो जायगा।

नन्द—अक्रूर, मैं सम्मान का भूखा नहीं हूं।

अक्रूर—तो प्रेम के वशीभूत तो हो? यदि मुझ से प्रेम रखते हो तो उस प्रेम के नाते ही चले चलो।

नन्द—अवश्य चलता, तुम्हारी आज्ञा को कभी नहीं टालता, पर तुम जानते हो कि स्थिति क्या है? तुम्हारा वह मथुरेश-सब समय मेरे गोपाल की घात में लगा रहता है? नित्य किसी न किसी दैत्य को अपनी हिंसावृत्ति की पूर्ति के लिए उन की ओर भेज देता है। वह तो गोमाता के प्रताप से और यमुना मैया की दया से, फल उलटा होता है। गोपाल को हानि पहुंचने की अपेक्षा-दैत्य दल ही का विनाश होता है। ऐसी अवस्था में, समझ रहे हो अक्रूर?-मैं कैसे इन बालकों के साथ उस हत्यारे की ओर जाऊँ?

अक्रूर— पर उसका भेजा हुआ दैत्य दल—तुम्हारे कथन के अनुसार ही—जब गोपाल को हानि पहुँचाने की अपेक्षा—स्वयं बिनाश को प्राप्त होजाता है—तो फिर तुम्हें गोपाल सहित वहां चलने में क्या चिन्ता है ? तुम्हारे गोपाल तो काली नाग को नाथ चुके हैं ? नख पर गोवर्द्धन धारण कर चुके हैं ? फिर तुम्हें किस बात की आशङ्का है ? नन्दराय, यह उठता हुआ मेघ, यह चढ़ता हुआ सूर्य, और यह चढ़ता हुआ वायु का वेग, एक रोज़ सारे संसार को अपना महत्त्व दिखायेगा। मथुरेश पर ही नहीं, विश्व के समस्त नरेशों पर विजय पायगा :—

गऊ के दूध का बल सारी दुनिया को दिखायेगा।
बहाकर रक्त बधिकों का सुधा जग को पिलायेगा॥

इसलिए मैं फिर प्रार्थना करता हूं कि निःसङ्कोच उसे साथ लेकर मथुरा चलो, किसी प्रकार का भी सन्देह न करो।

नन्द—देखो, अगर मेरे गोपाल को वहां कुछ होगया तो उसके ज़िम्मेदार तुम होओगे ?

अक्रूर—हाँ, मैं ज़िम्मेदार होऊंगा। नन्दराय, मैं मथुरा की प्रजा का एक छोटा सा सेवक-नेता हूं। यदि श्यामसुन्दर का वहां एक बाल भी बांका होगा, तो मेरी आज्ञा पर वहां के एक हज़ार निवासी अपने शीश कटा देंगे।

नन्द—अच्छा तो चलिये-चलता हूं। आप घनश्याम और बलराम को अपने साथ लेकर चलिये, मैं भेंट की वस्तुएँ लेकर गोपदल के साथ चलूंगा। बेटा घनश्याम! बलराम! यहाँ आओ।

[कृष्ण बलराम दोनों का प्रवेश]

श्रीकृष्ण—आज्ञा पिता जी।

अक्रूर—(स्वगत) आओ, आओ, भक्त-उर-चन्दन आओ, दुष्ट-निकन्दन जगवन्दन-आओ। तुम्हारे दर्शन मात्र ही से, मुझ भिखारी के लिये त्रैलोक्य की सम्पदा प्राप्त हो गयी। यह आत्मा आनन्दित और यह देह कृतार्थ हो गयी।

नन्द—(श्रीकृष्ण से) मथुरेशने एक उत्सव रचाया है-जिसके लिये अक्रूर जी को भेजकर-तुम दोनों के साथ मुझे बुलाया है। चलो वहां हो आयें।

श्रीकृष्ण—जैसी आज्ञा; चलने में कितना विलम्ब है?

अक्रूर—बस तैयार हैं।

श्रीकृष्ण—यदि आज्ञा हो तो माता जी से मिल आऊँ, उन्हें प्रणाम कर आऊँ।

नन्द—हां-हां-मिल आओ, प्रणाम कर आओ।

बलराम—(सामने देख कर) वह तो इधर ही आरही हैं।

[यशोदा का आना]

यशोदा—क्यों-क्या मेरे लाल को मथुरा लेहो जाओगे ? तुम कैसे पिता हो ? अच्छा यदि तुम ले जाने ही को तैयार हो गये हो तो तुम नहीं ले जा सकते। तुम पिता हो और मैं माता हूं। पिता से माता की पदवी बड़ी है। इसलिये मैं माता-माता होने के अधिकर से-अपने इस बछड़े को उस वधिक के सामने जाने से रोकती हूँ। छोड़ दो-मैं इसे नहीं छोड़ सकती हूँ:-

विदा इस घर से माखन का खिलैया हो नहीं सकता।
पृथक् मैया की छाती से कन्हैया हो नहीं सकता ॥

अक्रूर—देवी, राजा के यहाँ पहुँचना बड़ा कठिन होता है। दरबान, दीवान, बख्शी, खवास आदि कितने ही लोगों से मिलना पड़ता है—तब वहां तक प्रवेश होता है। इन्हें तो उसने स्वयं निमन्त्रण भेजा है, कैसा अच्छा अवसर मिला है।

यशोदा—अरे मैं तुम्हारे राजा को क्यों जानूं, मेरा राजा तो (श्रीकृष्ण को बतलाकर) यह है।

बलराम—जाने दे मैया, जाने दे। मैं भी तो कन्हैया के साथ जा रहा हूँ। छाया की तरह सब समय इनके समीप ही रहूँगा। इन्हें अकेला नहीं छोड़ूंगा।

श्रीकृष्ण—राजा के यहाँ जाने से ऊँची पदवी मिल जायगी, बड़ी उपाधि मिल जायगी, इसकी तो हमें इच्छा नहीं है। हां-यह लालसा अवश्य है-कि जिसकी धाक से सारा व्रज-मण्डल थर्रा रहा है-उस कंस को हम भी देखें कि कैसा है ? (स्वगत) समय आगया है कि अब भूमि का भार हरण करूँ, मथुरा में जाके सबसे पहले अपने माता पिता का उद्धार और फिर दुष्ट कंस का संहार करूं। इसलिए—इस समय यशोदा मैया की बुद्धि में,-यह मुझे आज्ञा दे दे-ऐसी प्रेरणा करना चाहिए। और शीघ्र मथुरा पहुँच कर अपनी इस बाललीला के खेल को सम्पूर्ण करना चाहिए।

अक्रूर—क्यों नन्दलाल, क्या सोच रहे हो ?

श्रीकृष्ण—माता की आज्ञा होगी तो अवश्य चलूंगा। इन की आज्ञा विना कैसे जा सकूंगा ?

अक्रूर—भेज दो, यशोदा मैया भेजदो। ज्यादा चिन्ता और सोच विचार न करो।

यशोदा—(श्रीकृष्ण से) क्यों बेटा, तेरी क्या इच्छा है ?

श्रीकृष्ण—ग्वालवालों के साथ जब पिता जी जारहे हैं, भैया बलराम जा रहे हैं, तो मेरे जाने में डर ही क्या है ?

यशोदा—तेरी ऐसी ही इच्छा है तो मैं हठ नहीं करती।

अंक्रूर—अच्छा तो आओ। नवदूर्वा-दल-श्याम, नयनाभिराम, मेरे साथ आओ। द्वारे पर कंस-राज का भेजा हुआ रथ खड़ा है; उस पर सवार हो जाओ।

यशोदा—बेटा बलराम, मैं अपने कन्हैया को तुझे सौंपती हूं। और बेटा कन्हैया, अपने बलराम को तुझे सौंपती हूं। (नन्द से) और सुनते हो स्वामी, इन दोनों को तुम्हारे हाथों सौंपती हूं। (श्रीकृष्ण से) मेरे लाल, यहाँ जैसा उत्पात वहाँ जाकर न करना। जितने दिन रहना—शान्ति पूर्वक रहना (अक्रूर से) देखो जी, तुम माता के लड़ैते को ले तो चले, परन्तु यह याद रहे कि यह मेरा प्राणाधार है। हृदय के पालने पर झूलने वाला सुकुमार है। इसके कोमल शरीर को कुछ आँच न आये। यह खिला हुआ फूल ग्रीष्म के ताप से सूख न जाय।

अक्रूर—(स्वगत) माता के स्नेह तुझे धन्य है (प्रकट) महादेवी, तुम निश्चिन्त रहो, विश्वास रक्खो, यह वह बारहमासी फूल है जो हमेशा इसी तरह खिला रहेगा। ग्रीष्म का ताप, वर्षा का बहाव, और हेमन्त का शीत, इसे नहीं मिटा सकेगा।

श्रीकृष्ण और बलराम—अच्छा—मैया, प्रणाम।

यशोदा—चिरंजीवी हो, प्रसन्न रहो;—

(गायन नं० २२)

यशोदा—

जाओ हे अभिराम !

बलराम, घनश्याम, छविधाम, सुखधाम,

बलधाम, गुणधाम, पूरण करो काम,

प्रेम वीरता की किरणों से, जगका तिमिर विनाश करो।

चन्द्र सूर्य की तरह विश्व पर, दोनों पूर्ण प्रकाश करो ॥

—०—

(स्थान "कारागार")

[देवकी पृथ्वी पर पड़ी हुई है, वसुदेव उसे सान्त्वना दे रहे हैं]

वसुदेव—प्रिये, कब तक रोया करोगी ?

देवकी—नाथ, यह आँसू वही आकर सुखा सकता है-जो आँखों के सामने से-इस तरह चला गया है--जिस तरह इस आकाश पर से मेघ आकर चला जाता है । कितने बरस गुज़र गये ? माता होकर भी मुझे माता होने का सुख प्राप्त नहीं हुआ:—

माता का यह हृदय है, नहीं है कुछ पाषाण ।
आंसू बनकर आंख तक, खिंच आये हैं प्राण ॥

वसुदेव—प्यारी, इस जीवन की नाटकशाला में हमारे तुम्हारे चरित्र तपस्या के चरित्र हैं, तपस्या किये जाओ—और दृढ़ता के साथ किये जाओ । यदि इस संसार में धर्म-बल मर नहीं गया है, तप-बल नष्ट नहीं होगया है, देव-बल समाप्त नहीं होगया है, तो एक दिन अवश्य हमारी विजय होगी ।

इसी चन्द्र सूर्य की छाया में-इसी हिमालय और विंध्याचल के मध्य में-इसी गङ्गा और यमुना के प्रदेश में-अपनी मनो-कामना सुफल होगी:—

सदा रहेगी नहीं यह, दुख की काली रात ।
देखेंगे हम भी कभी, सुख का स्वच्छ प्रभात ॥

देवकी—यह तो समाचार आते हैं कि मेरे पुत्र ने अरिष्टासुर को मार डाला—केशी को मार डाला—व्योमासुर का वध कर डाला-यह समाचार नहीं आते-कि दूसरों के दुःख दूर करने वाला बेटा—अपने मां बाप के दुःख दूर करने का-क्या उपाय कर रहा है? क्या हमारे उद्धार का उसे ध्यान नहीं है?

वसुदेव—मैं तो समझता हूं-है। इस से ज्यादा उसे हमारी चिन्ता है-और शीघ्र ही वह इसके लिए कोई प्रयत्न करेगा।

देवकी—वह शीघ्र ही-कब? कष्टों की चक्की में माँ-बाप का जीवन पिस जाने के बाद?

वसुदेव—नहीं-परीक्षा पूरी हो जाने के बाद:—

यह बन्दीपन के दिन जो हैं, सो नहीं हमें दुख देते हैं ।
अपने भक्तों की इसी तरह, भगवान् परीक्षा लेते हैं ॥

देवकी—हमारी भक्ति-पूरी होगयी, अब उन्हें हमारा भक्त बन कर कुछ करना चाहिये। भगवान् होकर भी इस जीवन में वे हमारे पुत्र हैं, हम उनके मां बाप हैं।

वसुदेव—पिछले जन्म की किसी तपस्या के फल से हम ने उन्हें पुत्र रूप में पाया है। और इस जन्म की वर्तमान तपस्या के फल से उनका पूर्ण सुख भी प्राप्त करेंगे, हताश न हो :—

देवकी—

होगयी है अब तो सीमा, कष्ट कारागार की।
क्या खबर किस रोज आयेगी घड़ी उद्धार की॥
आचुका अन्तिम सँदेशा, प्राण अब जाने को हैं।

नारद— आकर)

जा चुका है दुःख अब, सुख के सुदिन आने को हैं॥

दम्पतिवर, मैं यह शुभ समाचार आपको सुनाने आया हूँ कि त्रिलोकी के प्रतिपाल, आपके प्राण प्यारे लाल, गोकुल के गोपाल, आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र, नन्द, बलराम और ग्वाल बालों के सहित मथुरा आगये।

वसुदेव—आगये ?

नारद—हाँ, आगये। अब मथुरेश को पराजय, और आपके भाग्योदय में विलम्ब नहीं है।

वसुदेव—धन्य देवर्षे। यह समाचार सुनाकर आपने हम मृतकों में जीवन डाल दिया—चौदह वर्ष के वनवास के बाद, भगवान् रामचन्द्र के आगमन का समाचार—जिस प्रकार श्रीहनुमान् जी महाराज ने—अयोध्या-वासियों को सुनाया था और

अपना ऋणी बनाया था, उसी प्रकार आपने हम कारागार-वासियों को यह समाचार नहीं सुनाया अपना ऋणी बनाया। हम भी उन्हीं अयोध्यावासियों के शब्दों में यह कहना चाहते हैं कि—

"उन से पहले तुमने आकर, मेटे संताप हमारे हैं।
जब तक पृथ्वी-नभमंडल है, तब तक हम ऋणी तुम्हारे हैं॥"
कहिये वे पहले यहाँ आयेंगे, या मथुरेश की ओर जायेंगे ?

नारद—व्रजवल्लभ का तो यही विचार है कि पहले यहाँ आयें—तब मथुरेश की ओर जायें। मथुरापुरी में आकर अपने माता पिता को कष्ट कारागार से छुड़ाना वे अपना मुख्य कर्म्म समझते हैं। इस ऋण से उऋण होना परम धर्म्म समझते हैं। लीजिये, सामने से वेही आ रहे हैं:—

सृष्टि नूतन हो के शोभा पा रही अत्यन्त है।
फिर वसन्त आया, हुआ हेमन्त का अब अन्त है॥

(श्रीकृष्ण, बलराम, का—नन्द, श्रीदामा, मनसुखा, विशाल, ऋषभ सहित आना)

नन्द—किधर हैं भैया वसुदेव ?

वसुदेव—आओ भैया नन्द।

(भेंटना)

देवकी—(श्रीकृष्ण की ओर संकेत करके नारद से) गोपाल यही है ?

नारद—(धीरे से) हाँ माता, पर अभी कुछ देर तक वात्सल्य भाव दबाये रहो, मातृ-सम्बन्ध छुपाये रहो :—

तपस्या अपनी बरसों की न क्षण भर में डिगा देना ।
समय से पहले, अभिनय पर यवनिका मत गिरा देना ॥

वसुदेव—क्या यही आपका पुत्र गोपाल है ? आओ बेटा, तुम्हें आशीर्वाद दूं (हृदय लगाकर) चिरजीवी हो (बलराम को देखकर) यह इसका बड़ा भाई है ?

नन्द—हाँ, यह इसका बड़ा भाई है, और इसलिये बड़ा भाई है कि यह नन्द-नन्दन से प्रथम उत्पन्न होनेवाला—वसुदेव-नन्दन है । आपकी दूसरी भार्य्या महारानी रोहिणी का पुत्र बलराम यही है ।

वसुदेव—यही बलराम है ? आओ बेटा, तुम्हें भी आशीर्वाद दूं (हृदय लगाकर) दीर्घायु हो । (देवकी को बताकर) अपनी इस मैया के भी चरण छुओ ।

देवकी—(बलराम के पैर छूने पर) जीते रहो मेरे लाल ।

नन्द—भैया, वास्तव में आपने और महारानी देवकी ने बड़े कष्ट उठाये हैं, आठवीं बार एक कन्या हुई थी—उसे भी तो राक्षस ने नहीं रहने दिया, उत्पन्न होते ही मृत्यु के पत्थर पर पटक कर चकना चूर कर दिया ।

वसुदेव—क्या करें, हमने तो इस सिद्धान्त पर कारागार के वर्ष व्यतीत किये हैं :—

चुप चाप कष्ट सहना, पर मुंह से कुछ न कहना ।
जिस हाल में हरि रक्खें, उस हाल ही में रहना ॥

नन्द—परन्तु यह नहीं समझ में आया—कि आठवीं सन्तान ले लेने के बाद, उस दुष्ट कंस ने, आपको कारागार से मुक्त कर के फिर कारागार में क्यों डाल दिया ?

वसुदेव—क्या बताऊँ !

नन्द—कुछ तो बताओ ?

वसुदेव—नहीं मैं बता नहीं सकूंगा :—

कोष मेरा है सुरक्षित, यह मुझे सन्तोष है ।
पर मैं मुंह से कह नहीं सकता कि मेरा कोष है ॥

नन्द—नहीं, तुम्हें यह रहस्य अवश्य बताना होगा ।

वसुदेव—जी चाहता है कि—नहीं बताऊँ । नन्द भैया, तुम प्रसन्न रहो, तुम्हारा पुत्र प्रसन्न रहे । मैं अब यही चाहता हूँ—कि इस कष्ट कारागार से यदि छूट जाऊँ, तो अपना शेष जीवन तुम्हारी और तुम्हारे पुत्र की सेवा ही में बिताऊँ । और मुझे कुछ नहीं कहना है :—

लहर सागर की ऊपर को उछलती है उमँडती है ।
मगर वह सामने के चन्द्रमा को छू न सकती है ॥

नारद—[नन्द से] वसुदेव जी तो नहीं बता सकते, मैं बता सकता हूँ नन्दराय, कि कंस ने इन्हें दूसरी बार कारागार में क्यों डाला।

नन्द—आप ही बताइये।

नारद—पर उस में तुम्हें थोड़ा सा कष्ट होगा।

नन्द—होने दीजिये।

नारद—अच्छा तो सुनिये। जिस प्रकार यह बलराम जा नन्द-नन्दन नहीं, वसुदेव-नन्दन हैं, उसी प्रकार यह घनश्याम भी नन्द-नन्दन नहीं, वसुदेव-नन्दन हैं।

नन्द—यह कैसे ?

नारद—इसका उत्तर गोकुल की वह धाय देगी जिसने उस भादों वदी अष्टमी की रात्रि को-यशोदा मैया के पास रहकर-सौरी में एक कन्या को जनाया था।

नन्द—और ?

नारद—और मैं भी एक साक्षी हूँ। मेरे सामने ही वसुदेव जी ने इन श्यामसुन्दर को मथुरा से गोकुल पहुँचाया था।

नन्द—और ?

नारद—और ? और स्वयं वसुदेव जी भी प्रमाण स्वरूप यहां उपस्थित हैं–जिन्होंने यह कार्य्य कर दिखाया था।

नन्द—और ?

नारद—और न पूछो नन्द बाबा। सब से बड़ा प्रमाण उस माता का हृदय है जो अपने लाल को देखकर उमँड रहा है। जरा इन श्यामसुन्दर को उसके पास भेज दीजिये–फिर तो यही स्वयं बता देंगे कि इतने बरस बाद भी–इन्हें देखकर, उस तपस्विनी, उस वीर–जननी, मैया की छातियों से दूध बह रहा है। और इससे जियादा प्रमाण चाहते हो, नन्द बाबा ?

नन्द—नहीं, अब कोई प्रमाण नहीं चाहता। निश्चित हो गया कि यह नन्द–नन्दन वसुदेव–नन्दन हैं। [वसुदेव से] लो वसुदेव, जिन्हें इतने बरस तक मैंने अपना पुत्र समझकर पाला, जिन्हें आज के दिन तक मैंने अपना इकलौता बेटा जान कर–प्राणों का प्यारा और नयनों का तारा बनाकर रक्खा, उन्हीं–श्यामसुन्दर को–उन्हीं ब्रजगोपाल को–इस आकाश की छाया में, इस गोप–समाज के समक्ष में, तुम्हें सौंपता हूँ। इस समय यदि यशोदा भी होती तो अच्छा था ! पर खैर, जाने दो, मैं उसे समझा लूंगा। [श्रीकृष्ण से] जाओ गोपाल, अब तक मेरा और तुम्हारा जो पिता पुत्र का नाता था, वह एक माया थी, बिजली की सी चमक थी, अब तुम अपने

जन्म-दाता माता पिता के पास जाओ। मैं कभी कभी इनके यहाँ आकर ही तुम्हें देख लिया करूँगा। बरसों का नाता क्षण भर में तो कैसे टूट जायगा? (वसुदेव से) भैया वसुदेव, लीजिये, आपके हाथों में आपकी धरोहर देता हूं। (वसुदेव के हाथों में श्रीकृष्ण का हाथ देकर) मैं आज एक ऐसे बड़े भारी ऋण से—जिसकी मुझे खबर नहीं थी—उऋण हो गया:—

जिसे अपना समझ कर आज तक गोदी खिलाया था।
नहीं मालूम था इतना कि वह बेटा पराया था॥
चलो अब इस तरह डाले बदल आँखों के तारे हैं।
जगत में जितने बेटे हैं सभी बेटे हमारे हैं।

वसुदेव—भैया नन्द, मैं जानता हूं इस समय तुम्हारे हृदय में कितना युद्ध होरहा है। मैं जानता हूं कि इस समय तुमने कितने साहस का—कितने त्याग का—और कितनी उदारता का परिचय दिया है। परन्तु—वसुदेव इतना नीच नहीं है, जो तुम्हारे उपकार का बदला इस प्रकार चुकाये—कि तुम्हारे एक मात्र प्राणप्यारे का तुम से बिछोह कराये। जाइये मैं शुद्ध हृदय से कहता हूं—सच्चे भाव से कहता हूं, सौगन्ध पूर्वक कहता हूं—कि यह नन्द-नन्दन, नन्द-नन्दन ही रहेंगे। वसुदेव अपने अधिकार को एक दिन गुप्त रीति से तुम्हें दे आया था, आज सब के सामने प्रकट रूप में देता है:—

तुम्हीं ने इन की रक्षा की, तुम्हीं ने इनको पाला है ।
तुम्हीं ने आज तक धन की तरह इनको संभाला है ॥
तो अब भी यह बड़े होकर तुम्हारे माने जायेंगे ।
नरेश्वर होके भी गोपाल हो जग में कहायेंगे ॥

जाओ नन्द-नन्दन, अपने पिता नन्द के पास जाओ ।

नारद—धन्य ! दो चरित्र हैं—एक से एक बढ़ा हुआ, एक से एक चढ़ा हुआ । एक त्याग-मूर्ति है—तो दूसरा न्याय-वीर ! एक योगी और तपस्वी है-तो दूसरा धोर गम्भीर । अच्छा वसुदेव, नन्द, सुनो—आज से यह श्यामसुन्दर सारे संसार में वसुदेव-नन्दन और नन्द-नन्दन दोनों ही नाम से पुकारे जायेंगे, दोनों ही नाम से ख्याति पायेंगे (श्रीकृष्ण से) जाओ गोपाल, उधर खड़ी हुई अपनी मैया देवकी से तो मिल आओ । उसके व्यथा-पूर्ण हृदय को तो शान्ति पहुँचा आओ । कितने समय से वह तुम्हारा वियोग सहन कर रही है ! कितनी देर से वह तुम्हारी ओर उत्कण्ठा और आतुरता की छुपी हुई दृष्टि से देख रही है !

श्रीकृष्ण—(देवकी के चरण छूकर) माता-प्रणाम ।

देवकी—आओ मेरे लाल, (हृदय लगाकर) तुम्हीं मेरे हृदय-मन्दिर की मनोहर मूर्ति हो, तुम्हीं मेरे तपस्या-काल की आज पूर्ति हो—

बहुत दिन बाद कङ्गालिनि ने अपना रत्न पाया है ।
न तुम आये हो सम्मुख, प्राण में फिर प्राण आया है।।
यशोदा से कहूंगी मैं बड़ी बस तू ही माता है ।
मेरे नाते से बढ़ कर तेरा मनमोहन से नाता है ।।

श्रीकृष्ण—(वसुदेव से) पिता जी, आज्ञा हो तो अपने मन को एक इच्छा पूरी करूँ ।

वसुदेव—वह क्या ?

श्रीकृष्ण—अपने हाथों से आप को कारागार के बंधन से मुक्त करूँ, आपकी हथकड़ियाँ और वेड़ियां खोल दूँ ।

वसुदेव—पर वह तो कंस की आज्ञा की हथकड़ियाँ और वेड़ियाँ हैं ।

श्रीकृष्ण—कंस मामा की आज्ञाओं का समय-अब बीत गया । उन का राज-काल अब काल के मुख में चला गया । एक दिन उनसे सारा व्रज मण्डल कांपता था-आज वे सारे व्रज-मण्डल के आगे कांप रहे हैं:—

कुछ रोज़ की हवा थी जो कुछ रोज चल गयी ।
थी आग फूंस की जो ज़रा देर जल गयी ।।
जिस ख़ाक के टीले पै खड़े थे वे गर्व से—
मिट्टी तमाम उस के तले की निकल गयी ।

वसुदेव —तो अब क्या होगा ?

श्रीकृष्ण—अब ? यह होगा कि :—

न सिर होगा वह गर्वीला; न उस पर ताज ही होगा ।
न वह परिषद्, न वह मन्त्री, न वह नर-राज ही होगा ॥
पतङ्गें पाप की हत्थे से बस अब टूट जायेंगी ।
धरा पर धर्म्म की फिर से ध्वजायें फरफरायेंगी ॥

अच्छा—अब आज्ञा हो कि मैं अपना कर्त्तव्य पालन करूँ ।

(वसुदेव के बन्धन खोलते हैं)

नारद—

यों विदा होते हैं, सुख आने पै दिन सन्ताप के ।
इस जगत ही में चरित हैं पुण्य के और पाप के ॥
एक बेटा वह है जिसने बाप को बन्दी किया ।
एक बेटा यह है बन्धन खोलता है बाप के ॥

श्रीकृष्ण—आज मैं पिता के ऋण से उऋण होगया । अब यह बतलाइये कि उग्रसेन नाना किस ओर हैं ?

वसुदेव—वह इस कारागार के पिछले भाग में कष्ट भोग रहे हैं ।

श्रीकृष्ण—अच्छा तो अब उन्हें भी बंधन-मुक्त करने जाता हूँ :—

क्रम में जितने शेष हैं सब करने हैं काज ।
सारे व्रत और तपों का उद्यापन है आज ॥

(जाना)

वसुदेव—(नन्द से) नन्दराय !

नन्द—भैया वसुदेव।

वसुदेव—अब यह बेटा तुम्हें नहीं दूंगा। ऐसा बेटा कहीं दिया जा सकता है ?

नन्द—न दीजिये, अपने पास ही रखिये, और मुझे तथा यशोदा को भी सदा के लिये-अपनी सेवा ही में रहने की आज्ञा देदीजिये।

वसुदेव—देख रहे हो कैसा बेटा है :—

मरे हैं जितने बेटे वेदना उन सब की खो दी है।
सफल यह जन्म, जीवन है, सफल वह कोख, गोदी है॥
तपस्या-काल तपवालों का पूरा हो तो ऐसा हो।
जगत के बालको, देखो, जो बेटा हो वो ऐसा हो॥

नारद—भगवान् की माया तो देखिये। दम्पति यह जानते हुए भी-कि ब्रजवासी श्रीकृष्ण-गोलोकवासी परम पुरुष हैं, इस समय उस ज्ञान को भूले हुए हैं, और सांसारिक माता पिता के समान उन्हें पुत्र भाव से देख रहे हैं।

(उग्रसेन के साथ श्रीकृष्ण का आना)

उग्रसेन—नहीं बेटा, पुत्र से दौहित्र आज बढ़ गया है। मै आज यह नियम बनाता हूँ कि पुत्र के अभाव में-दौहित्र नाना की सम्पत्ति का पूर्ण अधिकारी हो।

श्रीकृष्ण—नहीं नाना, मुझे सम्पत्ति नहीं चाहिये, मैंने तो अपना कर्त्तव्य पालन किया है। अच्छा. अब आप ऐसा कीजिये कि राजसी वस्त्रों में (वसुदेव देवकी को बताकर) मेरे इन माता पिता के सहित—राजसभा की ओर आइये। (नारद से) देवर्षे, आप इन्हें लाइये। मैं अपने बाबा, दाऊ और ग्वाल-बालों के समेत—आज का अपना अन्तिम कर्त्तव्य पालन करने के लिये—अब उसी ओर जाता हूं। मामा ने जितने बच्चों का बध किया है—उन सब की हत्याओं का बदला इसी समय उनसे चुकाता हूं :—

प्रलय का दृश्य होगा आज उत्सव के अखाड़े में।
समर की गत बजेगी, रङ्ग-मण्डप के नगाड़े में॥
प्रतिज्ञा है—पलट दूंगा, जमाना आज मथुरा का।
पहन लें दिन रहे तक मेरे नाना ताज मथुरा का॥

(गायन नं० २३)

रङ्गस्थल, युद्धस्थल करदूं। मलके, दलके, खल दल धरदूं
त्रास में, अरि में कम्पन हो।
धर्म्म जो सहाई है, धर्म्म की दुहाई है,
धाय पछाड़ूंगा, मारूंगा, शीश उतारूंगा, छाती विदारूंगा,
फाड़ूंगा काई सी, काटूंगा मूली सी, दुष्टों की सेन।
तब ही जीवन—जीवन हो

—०—

वसुदेव—इस बालपन में इतना बड़ा उत्साह ?

बलराम—बालपन में ? सूर्य्य अपने बालपन ही में—अपना प्रकाश घर घर पहुँचा देता है। मेघ अपने बालपन ही में अपना अस्तित्व सब को बता देता है :—

जिन वंशीधारी हाथों ने वृषभासुर मार गिराया है।
नख पर गोवर्द्धन धारा है, काली को नाच नचाया है॥
वे ही अब मल्ल युद्ध करके, शासन मतवालों से लेंगे।
बालों के मरने का बदला, मामा के बालों से लेंगे॥

नन्द—मामा को मारने की प्रतिज्ञा करनेवाले बालको, अपने इन नाना उग्रसेन के हृदय की ओर देख कर ऐसी प्रतिज्ञा करो। वह इनके हृदय का टुकड़ा है—वह इन के घर का दीपक है—वह इनके नेत्रों का तारा है—वह इनके जीवन का एक मात्र सहारा है।

उग्रसेन—नहीं-नहीं, वह मेरे शरीर का सड़ा हुआ माँस है—वह मेरे घर को फूंक देनेवाला दीपक है—वह मेरे नेत्रों का मोतियाविन्द है—वह मेरे जीवन का एक कलंक है। मिटा दो, समाप्त कर दो, माँ बाप की छाती में—छलनी की तरह छेद कर डालने वाले—उस निरंकुश छोकरे को सदा के लिये पृथ्वी की छाती पर सुलादो। मैं ऐसी ही प्रकृति का एक बाप हूँ—जिसके सामने अपने नालायक बच्चे के मोह की मूर्ति नहीं,

संसार के सहस्रों निर्दोष बच्चों की रक्षा का विचार है; जो दुनिया से दुराचार मिटवा देने के उद्देश्य से—अपने दुराचारी पुत्र तक की आहुति—मृत्यु के मुख में देने के लिये तैयार है :—

मरे वह भ्रात जिसको दुष्टता की बात भाती है ।
मरे वह शिष्य, गुरु के द्रोह का जो पक्षपाती है ॥
मरे वह नारि, जो व्यभिचार में जीवन बिताती है ।
मरे वह पुत्र, जो पापी, कुचाली, वंशघाती है ॥
जो आपा भी हो खोटा, नष्ट करदो, धर्म्म रखने को ।
मिटा दो पाप का संसार भी सत्कर्म रखने को ॥

नारद—धन्य, मथुरापुरी के बूढ़े स्तम्भ—आपके आदर्श को धन्य है । (वसुदेव से) वसुदेव, अब इन ब्रजविहारी को विदा करने में विलम्ब न कीजिये, इन्हीं के करने योग्य उस महान् कार्य के लिये इन्हें जाने दीजिये । इनके बालकपन पर सन्देह करना व्यर्थ है । आप भूल रहे हैं—यह तो ऐसे ही कार्य्यों के लिये संसार में आये हैं ।

मनसुखा—और फिर हम भी तो लाठियां लिये हुए साथ हैं । गोवर्द्धन तक इन लाठियों ने उठा लिया तो वह ढाई हड्डियों वाला आदमी किस खेत की मूली है । ऐसा जड़ा हो बिन्नौटा—कि सब खाई पी भूल जाये !

वसुदेव—अच्छा तो जाओ गोपाल, कार्य्य सिद्ध करो ।

विजय आज नरसिंह की नाईं कंस–हिरण्यकशिपु पर पाओ ।
मथुरा की लङ्का पर डङ्का, रामचन्द्र की तरह बजाओ ॥

(गायन नं० २४)

—:o:—

सब—

विजयी वे हो इस दुनिया में होते हैं ।
जो कभी धर्म्म और सत्य नहीं खोते हैं ॥
पर-हित और पर-उपकार है जिनके मन में ।
है दया, नम्रता जिनके हृदय–भवन में ॥
निष्काम कर्म करते हैं जो जीवन में ।
उनके ही डंके बजते हैं त्रिभुवन में ॥
यश और कीर्ति का बीज वही बोते हैं ।
जो कभी धर्म्म और सत्य नहीं खोते हैं ॥

—:o:—

(श्रीकृष्णचन्द्र का–नन्द, बलराम, श्रीदामा, विशाल, ऋषभ आदि के साथ एक ओर तथा उग्रसेन, वसुदेव, और देवकी सहित नारद का दूसरी ओर को जाना । सीन का ट्रांसफ़र होकर कंस की मल्लशाला बनजाना)

स्थान—मल्लशाला ।

[कंस का अक्रूर आदि दरबारियों के साथ आना और यथा स्थान बैठना, तथा कसरत आदि के खेल देखना)

कंस—(खेलों के बाद) अक्रूर जी !

अक्रूर—महाराज ।

कंस—तुम जिन्हें गोकुल से बुलाकर लाये हो, वे अपने प्रतिष्ठित अतिथि, अभी तक उत्सव-मण्डप में नहीं आये ? क्या कारण है ?

अक्रूर—महाराज, मथुरा आने के उपरान्त, मैं उन्हें राज के अतिथि-मन्दिर में ठहरा कर, अपने घर चला गया था। इस समय-यहाँ आने के पहले-मैं उनकी ओर गया-तो मालूम हुआ कि वे उस जगह से-यहां के वास्ते रवाना होचुके हैं। आश्चर्य है कि अब तक नहीं पहुँचे ! कहीं मार्ग में ठहर गये होंगे; आते ही होंगे ।

कंस—मैं एक बात देख रहा हूं अक्रूर ?

अक्रूर—क्या महाराज ?

कंस—गोकुल से आकर तुम कुछ बदल से गये हो। किसी विशेष विचार में निमग्न दिखाई देते हो।

अक्रूर—हां-महाराज-बात तो ऐसी ही है।

कंस—क्या उसे बता सकते हो ?

अक्रूर—बताना तो नहीं चाहता था-पर आप पूछते हैं तो बताता हूं। मैं जब गोकुल से मथुरा आरहा था-तो मार्ग में यमुना-स्नान करते समय एक ऐसा चमत्कार देखा, जिसने हृदय ही में नहीं-आत्मा तक में-महानन्द का सञ्चार कर दिया।

कंस—क्या चमत्कार देखा ?

अक्रूर—मैंने देखा कि जो श्रीकृष्ण रथ में बैठे हैं-वे ही यमुना के जल के भीतर भी मुझे दर्शन दे रहे हैं।

कंस—[हँस कर] अरे यह सब तुम्हारी आंखों का दोष है, बुद्धि का भ्रम है, और कुछ नहीं। कभी कभी मनुष्य की छाया जल में इस तरह दिखाई दे जाती है-कि एक के स्थान में दो रूपों की भ्रान्ति होती है।

अक्रूर—नहीं महाराज, मुझे तो इस बात से दृढ़ विश्वास होगया है कि श्रीकृष्ण साक्षात् नारायण के अवतार हैं। साकार रूप में-निरंजन, निराकार और निर्विकार हैं।

कंस—अरे–तुम्हीं जैसे अन्ध विश्वासियों ने इस आर्य्य-धर्म्म के उदार क्षेत्र को–एक संकुचित क्षेत्र बनाया है। एक ग्वाले के यहां जन्म लेनेवाले छोकरे का निरञ्जन, निराकार और निर्विकार ठहराया है। तुम पर न बुद्धि है, न विचार है, न विवेक की छाया है :—

मनुज में–सर्वव्यापक, रूप धर कर ? आ नहीं सकता।
असम्भव बात है, गागर में सागर ? आ नहीं सकता॥

अक्रूर—आ क्यों नहीं सकता ? गागर में आकर भी–सागर का जल–सागर ही का जल कहलाता है, कूप का जल नहीं माना जाता :—

रगड़ से काष्ठ में उत्पन्न होती जैसे ज्वाला है।
पुकारों से जनों की त्यों ही वह बन आया ग्वाला है॥
अगर कल्याण अब भी चाहते हो तो सँभल जाओ।
उठाकर पाँव को, अज्ञान–दलदल से निकल जाओ॥

(चाणूर का आना)

चाणूर—मथुरेश की दुहाई है !

कंस—क्या है चाणूर ?

चाणूर—महाराज ! आज मथुरापुरी बिना राजा का सी नगरी हो रही है।

कंस—हैं–यह तुम क्या कह रहे हो ?

चाणूर—ठीक कह रहा हूं महाराज। उस गोकुलवासी नन्द-नन्दन ने ग्वालबालों के साथ-इस नगरी में आकर-बड़ा उत्पात मचा डाला है।

कंस—उत्पात? कैसा?

चाणूर—सरकार के रजक को मारकर-उससे सब सरकारी वस्त्र छीन लिए। तन्तुवायु ने उन्हें समस्त सुन्दर और बहुमूल्य राजसी पट भेंट कर दिये। सुदामा नाम का माली-जो दरबार के लिये डाली ला रहा था-उसने वह दरबार की डाली भी उन्हीं को दे डाली। कुब्जा नाम की दासी-जो श्रीमहाराज के वास्ते चन्दन लेकर आरही थी-उसका सब चन्दन भी उन्हीं के मस्तक पर चढ़ गया। इतना ही नहीं-उस नन्दलाल ने धनुष यज्ञ में जाकर, जैसे हाथी गन्ने को तोड़ डालता है-उसी तरह यज्ञ का धनुष खंड खंड कर डाला, और उसके रक्षकों को भी मार डाला।

कंस—तुम उस धनुष टूटने के समय कहाँ थे?

चाणूर—महाराज, मैं तो बगीची में डण्ड पेल रहा था।

कंस—वाह, यज्ञ का धनुष टूट गया, और तुम डण्ड ही पेलते रहे?

चाणूर—मल्लशाला में जो आना था महाराज।

कंस—अच्छा बैठ जाओ। (स्वगत) यह सब समाचार मैं इससे पहले ही सुन चुका हूं। सब सुनकर भी इन बातों पर पर्दा डाल रहा हूं, और राजरंग में अपना जी बहला रहा हूं। यह आज का उत्सव—सर्व साधारण को एकत्र करने का—कोई विशेष उत्सव थोड़े ही है, यह तो केवल उस छोकरे को यहाँ बुलाने का बहाना है, जिसके द्वारा बरसों का बैर—आज हो इसी चतुर्दशी के दिन, मुझे चुकाना है। पर हैं—मुझे हो क्या गया है ? सोते, जागते, रात में, दिन में, सब समय मुझे एक ही मूर्ति दिखाई देती है ? और वह मूर्ति उसी कृष्ण की दिखाई देती है ? ओह, कुछ चिन्ता नहीं, उसे यहाँ तक आने तो दो:—

कहाँ जायगा, सब तरफ़, बिछा हुआ है जाल।
उसका मैं अब काल हूं, जो है मेरा काल॥

(मुष्टिक का आना)

मुष्टिक—श्रीमहाराज !

कंस—क्या है मुष्टिक ? घबराए हुए क्यों हो ?

मुष्टिक—अन्नदाता, आपका वह कुवलयापीड़ हाथी—

कंस—हाँ, हाँ, क्या छूट कर भाग गया ?

मुष्टिक—नहीं।

कंस—तो उसने प्रजा के किसी आदमी को रौंद डाला ?

मुष्टिक—नहीं ।

कंस—तो फिर क्या हुआ ?

मुष्टिक—वह हाथी मार डाला गया ।

कंस—हैं, कुवलयापीड़ हाथी मार डाला गया ?

मुष्टिक—गोकुल से आनेवाले उस नन्दलाल ने उसकी सूंड पकड़ कर, इस तरह उसे चीर डाला, जिस तरह कोई खिलाड़ी केले के खम्भे को चीर डालता है ।

कंस—हाथी को चीर डाला ? क्या बक रहे हो ? कहीं भाँग ज्यादा तो नहीं चढ़ गयी है ?

चाणूर—हाँ महाराज, ज़रूर ज्यादा चढ़ गयी है, मैं जब डण्ड पेल रहा था तब यह भांग छान रहे थे । यह भाँग ही की बहक है । नहीं तो क्या छोटा सा बालक हाथी का वध कर सकता है ?

अक्रूर—[चाणूर से] कर सकता है । वह बालक बड़ा पराक्रमी और चमत्कारी बालक है, मुझे उस बालक के बल पर विश्वास है कि वह हाथी का वध कर सकता है । [कंस से] महाराज, इस समाचार का एक यह भी अर्थ है कि जिन्हें आप अभी याद कर रहे थे, वे नन्द-नन्दन मल्लशाला की ओर आरहे हैं ।

कंस—आरहे हैं तो आने दो। अब हमारे हाथों से वह बच भी नहीं सकते। चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल—सँभल जाओ, ज्यों ही वह ग्वाला यहां आये—त्यों ही सब मिलकर उसे पकड़ लो और परम धाम पहुँचाओ।

अक्रूर—महाराज, यह आप क्या कह रहे हैं? पांच आदमी अगर एक अकेले और निहत्थे बालक को पकड़ कर उसका बध करेंगे—तो महापाप होगा।

कंस—ऊँह, उन्हों ने अकेले और निहत्थे रजक को मार डाला तो महापाप नहीं हुआ! उन्हें यह उपदेश नहीं सुनाया जाता? अक्रूर, मैं तेरी नीति को जानता हूं। तू मेरा छुपा हुआ शत्रु है। भुजाओं का बल नहीं—आस्तीन का साँप है। तू ही ने मेरी प्रजा को उल्टा पाठ पढ़ाकर मेरे विरुद्ध भड़काया है। तेरे ही इशारे से, गोकुल के ग्वाले ने आ मथुरा में महा उत्पात मचाया है। पर मैंने अपनी नीति से आज तेरी नीति को भी कुचल डाला है। उस गोकुल के ग्वाले को मैंने यहां पूजा करने के लिए नहीं बुलवाया है? मैंने बुलवाया है—उसे नष्ट कर डालने के लिये। सदैव के वास्ते—समाप्त कर देने के लिये। और बुलवाया है तेरे द्वारा। तेरे द्वारा इसलिये कि वह जब यहाँ मार डाला जाय—तो सारे संसार में बालहत्या का कारण तू ठहराया जाय। विश्वास-

घात का टीका–सदा के लिये तेरे मस्तक पर लग जाय। इस प्रकार मैंने एक तीर से दो शिकार किये हैं। समझा अक्रूर ?

अक्रूर—महाराज, मैंने तो आप से क्षात्र धर्म की बात कही थी, आप तो गर्म हो गये।

कंस—गर्म हो गये ? मीठे जहर, बहुत सुन चुका तेरा क्षात्र धर्म। युद्ध में धर्म्म–और नीति का क्या काम ? धर्म्म पर चलना हो–तो माला लेकर घर ही में बैठा रहे, राज्य की झंझटों में कोई क्यों पड़े ? तू तो स्वयं कहता है कि वे ईश्वर हैं। जब वे ईश्वर हैं–तो उन के सामने एक और अनेक सब, समान हैं। पाँच क्या पाँच हजार भी उन्हें पकड़ कर मार डालना चाहें–तब भी वे नहीं मर सकते हैं। क्यों भगत जी महाराज, उत्तर ठीक मिला ? जाओ, उधर बैठ कर हर नाम की रट लगाओ, तुम कोई हमारे युद्ध-मन्त्री नहीं हो—

जानता हूं मैं तुम्हें, तुम जिस नशे में चूर हो।
नाम के अक्रूर हो पर वास्तव में क्रूर हो॥

अक्रूर—एक दस-बारह बरस के बालक को पाँच आदमियों द्वारा पकड़वा कर–वध करा देने की इच्छा रखने वाले नरेश, मैं तुम्हें अन्तिम चेतावनी दिए देता हूं कि यदि ऐसा करोगे तो बहुत बुरा होगा। मेरी एक आवाज पर मथुरा की समस्त प्रजा

इकट्ठी हो जायगी, और फिर तुमसे और तुम्हारे पाँच पहलवानों से एक बालक ही का नहीं—सारी मथुरा का मुक़ाबिला होगा।

कंस—आह, सारी मथुरा तो क्या सारी दुनिया भी मुझ से बदल जाये, तब भी मेरा इरादा नहीं बदल सकता। (साथियों से) वीरो, तुम किसी की मत सुना। मल्लशाला में मार डालने के लिये तैयार रहो।

कहां वह बच के जायेगा, अब उसका काल आ पहुँचा।

श्रीकृष्ण—(आकर)—

संभल मथुरेश, तेरे शीश पै नँदलाल आ पहुँचा॥

कंस—(चाणूर आदि से) हां-पकड़ लो, वध कर दो, भागने न पाये।

(नन्द का बलराम, मनसुखा आदि के साथ आना)

नन्द—ठहर जाओ। (कंस से) क्यों मथुरेश, मेहमानों के साथ ऐसा ही व्यवहार किया जाता है ?

कंस—मेहमान ऐसा ही व्यवहार किया करते हैं ? रजक को मार डाला-धनुष को तोड़ डाला-कुवलयापीड़ हाथी को चीर डाला-इतना ही नहीं—सारी मथुरा में एक बलवा सा मचा डाला, क्यों ? गइयों के चरवैया, मैं आज इन सब उत्पातों का बदला तेरे इस कन्हैया से लूंगा।

बलराम—पहले ही तुम ने कौन सी कसर रक्खी है—जो अब कसर रक्खोगे ? एक छोटे से बालक को मारने के लिये पूतना, तृणावर्त, शकटासुर, वृषभासुर, अघासुर, धेनुकासुर आदि कितने ही असुरों को मरवा डाला और अब इन रहों सहों को भी मरवा डालना चाहते हो। देखो, इधर देखो, हमारी तरफ़ देखो, हम अब भी छाती खोले हुए, तुम्हारी मल्लशाला में खड़े हुए हैं, यह हमारी निर्भयता और वीरता है। और तुम अपने घर पर भी—अकेले कन्हैया पर सब टूट रहे थे—वह तुम्हारी कायरता और नीचता है। बल हो तो एक एक आकर लड़ लो, निवट लो।

मनसुखा—हाँ—गउएँ चराने वालों के हाथों का बल देख लो।

नन्द—(अक्रूर से) क्यों अक्रूर जी, गोकुल में आपने जो बात कही थी वह याद है ?

अक्रूर—याद है। मैं अभी इन से कह चुका हूं—कि नन्द-नन्दन के साथ ऐसा व्यवहार करोगे—तो मेरी एक आवाज़ पर सारी मथुरा तुम्हारे मुक़ाबिले के लिये आ जायगी; पर यह नहीं समझे। मालूम होता है—कि समझ का देवता—इन के मस्तक से विदा हो चुका है। पछतायेंगे, करनी का फल पायेंगे।

बलराम—क्यों, बड़े बड़े डील डौल वाले पहलवानों; बालकों के साथ—एक एक आ कर कुश्ती लड़ोगे ? तुम्हें चुनौती है,

तुम्हें अपनी अपनी माताओं के दूध की सौगन्ध है, साहस हो तो आ जाओ, जंघा ठोंक कर इस अखाड़े में आ जाओ।

कंस—अब नहीं सुना जाता। यह उद्दण्डतापूर्ण भाषण अब नहीं सुना जाता।

चाणूर—(कंस से) मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं अखाड़े में जाऊँ और इन की निरंकुशता का इन्हें स्वाद चखाऊँ।

कंस—हां बढ़ जाओ, पटको हां नहीं, बल्कि सदैव के लिये भूमि पर सुला दो।

चाणूर—जय, जय, मथुरापति की जय।

बलराम—जय, जय, यमुना मैया की जय।

श्रीकृष्ण—(बलराम से) दाऊ, इस दुष्ट के लिये तो मैं ही बहुत हूं, मेरे होते हुए आप कष्ट न करें।

बलराम—नहीं कन्हैया, इस से मैं ही लड़ूंगा।

श्रीकृष्ण—नहीं, छोटे की हठ रखिये, इस से मुझे ही लड़ने दीजिये। आप दूसरे से लड़ लीजियेगा।

बलराम—अच्छा तुम ही लड़ो।

चाणूर—(बलराम से) क्यों डर गये ? तुम नहीं लड़ते ?

बलराम—तू एक छोटी सी शक्ति है, मैं लड़ कर क्या करूँगा ? मेरा छोटा भाई लड़ेगा।

चाणूर—मैं छोटी सी शक्ति हूं ?

श्रीकृष्ण—और नहीं तो क्या, अन्यायी राजा की खुशामद में लगी रहने वाली शक्ति—क्या कभी बड़ी शक्ति कहलाती है ?

चाणूर—बालक, मैं एक आँधी का वेग हूं।

श्रीकृष्ण—तो मैं उस आँधी के वेग के रेत को पृथ्वी पर पहुंचा देने वाला भयङ्कर मेघ हूँ।

चाणूर—मेरी शक्ति तेरे जीवन के वास्ते काल-रात्रि है।

श्रीकृष्ण—और मेरी शक्ति तेरी उस-रात्रि को नष्ट कर देने के लिये—प्रातःकाल के सूर्य्य की लाली है।

चाणूर—मैं काल हूँ।

श्रीकृष्ण—तो मैं महाकाल हूँ।

चाणूर—मैं प्रलय हूँ।

श्रीकृष्ण—तो मैं महाप्रलय हूँ। [नन्द से] बाबा, आज्ञा दीजिये कि आप के लालन पालन को शक्ति, आज सारे संसार को दिखलाऊँ।

नन्द—आज्ञा देने को जी तो नहीं चाहता था, पर इन की उद्दण्डताओं से विवश हो कर आज्ञा देता हूँ। लड़ो, यदि गौ माता और यमुना मैया सहाई हैं तो विजय होगी।

(श्रीकृष्ण और चाणूर का लड़ना, श्रीकृष्ण का चाणूर को इस बुरी तरह पृथ्वी पर पटकना कि उसका मरजाना)

चाणूर—आह ! सारा बदन चकना चूर होगया ! कृष्ण, तुम मनुष्य नहीं हो । हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण !!

(मृत्यु)

श्रीकृष्ण—(कंस से) अब और दूसरे को भेजो मामा ?

मुष्टिक—बालक, चाणूर को मार कर तूने यह समझ लिया कि मथुरा का राज्य योद्धाओं से खाली होगया ?

बलराम—क्या तू भी योद्धाओं में अपनी गिनती कराना चाहता है ?

मुष्टिक—गिनती ? अरे मैं तो मथुरापुरी का प्रख्यात योद्धा हूँ । परन्तु ग्वाले, तू कब से योद्धा बना ?

बलराम—जब से माता के गर्भ से जन्म लिया ।

मुष्टिक—मालूम होता है कि—तेरे पिता को अभी तेरी मृत्यु का समाचार सुनना पड़ेगा ।

बलराम—मालूम होता है कि—तेरे स्वामी को अभी तेरी लाश के पास बैठकर रोना पड़ेगा ।

मुष्टिक—देख मैं अवसर देता हूँ—अब भी सोच ले ।

बलराम—यदि तुझे युद्ध-कला न याद हो तो मुझ से सीख ले ।

मुष्टिक—मानी बालक, तू अवश्य मार डालने के योग्य है ।

बलराम—पापी मनुष्य, तू अवश्य वध कर डालने के योग्य है।

मुष्टिक—अच्छा तो आजा।

बलराम—आजा।

श्रीकृष्ण—(बलराम से) दाऊ, इससे भी मुझे ही लड़ने दीजिये !

बलराम—नहीं, तुम ज़रा देर दम लो, इससे मैं लडूंगा। (नन्द से) बाबा— ?

नन्द—हां मारो।

(बलराम की मुष्टिक से कुश्ती,
मुष्टिक का पृथ्वी पर गिरकर मरना)

मुष्टिक—आह, मरा ! मरा ! बलराम, मनुष्य के शरीर में तुम कौन हो ? राम ! राम !!

(मृत्यु)

श्रीकृष्ण—अच्छा, अब दो दो आजाओ।

(श्रीकृष्ण का शल और तोशल
को और बलराम का कूट और
दुर्मित को पछाड़ कर मारना)

श्रीकृष्ण—(कंस से) क्यों मामा ? और इन में से किसी को भेजते हो ?

कंस—क्या तुमने यह समझ लिया है कि इन दो चार साधारण से योद्धाओं को मार कर तुम्हें विजयश्री प्राप्त होगयी ?

श्रीकृष्ण—नहीं, अभी तो एक को मारना बाक़ी है।

कंस—वह कौन ?

श्रीकृष्ण—इस मथुरापुरी के राज्य का अत्याचारी राजा—कंस।

कंस—छोटे होकर बड़ों को ऐसे अपशब्दों में पुकारना तुमने कहाँ से सीखा ?

श्रीकृष्ण—जहाँ से तुमने अपनी बहन की सन्तानों का वध करना सीखा। जहाँ से तुमने अपने पिता का राज्य छीन कर उन्हें कारागार में डालना सीखा।

कंस—इन बातों को मेरे मुख पर कहते हुए तुम्हें भय नहीं लगता ?

श्रीकृष्ण—इन कार्यों को संसार के सामने करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आयी ?

कंस—अब तक मैं समझता था तुम अबोध बालक हो, तुम्हें छोड़ दिया जाय।

श्रीकृष्ण—अब तक मैं समझता था कि तुमने अत्याचार को समझ लिया है, तुम्हें छोड़ दिया जाय।

कंस—लड़के, मुझ से लड़ के तू नहीं जीत सकता, यह लड़कपन की बातें छोड़ दे।

श्रीकृष्ण—लड़के-लड़के अपनी शक्ति दिखा रहे हैं, फिर भी तुम नहीं समझते :—

हम लड़के हैं, हां लड़के हैं, लड़के ही लड़कपन करते हैं।
पर तुम्हें नहीं शोभा देता, जो लड़कों के मुंह लगते हैं॥

कंस—

सिर पै तेरे मौत का वैताल अब आने को है।

श्रीकृष्ण—

मुंद गया दिन, तेरा सायङ्काल अब आने को है॥

कंस—

छोड़ दे तकरार यह, भौंचाल अब आने को है।

श्रीकृष्ण—

पाप के अवतार, तेरा काल अब आने को है॥

(श्रीकृष्ण का आगे बढ़ कर, कंस की चोटी पकड़ कर, पृथ्वी पर गिरा कर उसको मार डालना)

कंस—आह! निश्चित होगया, अक्रूर का कहना ठीक है, कृष्ण, तुम सच्चिदानन्द हो!—

आज मेरी आत्मा परमात्मामय होगयी।
बूंद भी सागर हुई, सागर में जब लय होगयी॥
ॐ शान्ति, शान्ति, शान्ति। [मृत्यु]

(नारद का उग्रसेन, वसुदेव, देवकी, सहित आना)

नारद—जय, जय, धर्म की जय, अधर्म की क्षय—

भूमि भार टारो है, भारत उबारो है,

आपदा मिटायो है, कारज सँभारो है।

देवन में हर्ष है, विप्रन में मोद है,

सन्तन में सौख्य है, जीवन सो डारो है॥

कुंवर कन्हैया ने, वेणु के वजैया ने,

मैया और बाबा को संकट निवारो है।

धेनु के चरैया ने रास के रचैया ने,

छाछ के छकैया ने छत्रपति मारो है॥

उग्रसेन—गोपाल, मेरी इच्छा है कि अब मथुरा का राज-मुकुट, तुम्हीं अपने शीश पर सुशोभित करो। इस राज-सिंहासन को तुम्हीं पवित्र करो।

श्रीकृष्ण—नहीं नाना। मैंने कंस मामा को इसलिये नहीं मारा है कि मैं मथुरा का राजा बनूं। यह तो मैंने अपना कर्तव्य पालन किया है। मेरी प्रार्थना है कि इस राज्य को आप ही सँभालें। इस राजमुकुट को आप ही अपने शीश पर धारण करें।

नन्द—महाराज, अपने दौहित्र की अभिलाषा पूरी कीजिये।

श्रीकृष्ण—देवर्षे, आप अपने हाथ से यह कृत्य कीजिये।

(नारद उग्रसेन को ताज पहनाते हैं)

नारद—

ग्रीष्म गया, वर्षा गयी, हुआ शिशिर का अंन्त ।
मथुरा में फिर आगया, सुन्दर सुखद वसन्त ॥
भक्त जनों के आपने, किये पूर्ण सब काम ।
जय जय श्री राधारमण, जय श्री राधेश्याम ॥

❀ बोलो श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् की जय ❀

ड्रापसीन ।

इति.

रुक्मिणी मंगल

इस नाटक का मूल्य ।।।)

मशरिक़ी हूर

इस नाटक का मुल्य १)

प० राधेश्यामजी कविरत्न द्वारा लिखित रामायण—

जन्म	≡)
पुष्प-वाटिका	≡)
धनुष-यज्ञ	।)
विवाह	≡)
दशरथ का प्रतिज्ञा-पालन	≡)
कौशल्या माता से विदाई	≡)
वन-यात्रा	≡)
सूनी अयोध्या	≡)
चित्रकूट में भरत मिलाप	≡)
पंचवटी	≡)
सीताहरण	≡)
राम-सुग्रीव की मित्रता	।)
अशोक-वाटिका	≡)
लंका-दहन	≡)
विभीषण की शरणागति	≡)
अङ्गद-रावण का सम्वाद	≡)
मेघनाद का शक्ति प्रयोग	।)
सती-सुलोचना	≡)
रावण वध	।)
राज-तिलक	≡)

नोट—(१) यही पुस्तकें एक सुन्दर जिल्द में ।≈) अधिक देने पर अर्थात् ४।≈) में मिल सकती हैं।

(२) इन्हीं दामों में यह सब किताबें उर्दू हरूफ़ों में भी मिल सकती हैं।

उत्तर-राम-चरित्र

रामायण की तर्ज़ में आठवाँ काण्ड

इसमें मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र जी का अपनी पत्नी सीता को त्यागना, लव-कुश का जन्म तथा अश्वमेध यज्ञ होना आदि कथायें बड़े ही रोचक ढंग से लिखी गई हैं।

सीता-वनवास	।)
रामाश्वमेध	।)
लव-कुश की वीरता	।)
सतवन्ती सीता की विजय	।)

नोट- (१) यह चारों पुस्तकें उर्दू हुरूफ़ों में भी इन्हीं दामों में मिल सकती हैं।

(२) बीस भाग रामायण और चार भाग उत्तर-राम-चरित्र कुल २४ भाग एक ही सुन्दर जिल्द में ।≈) अधिक देने पर अर्थात् ५।≈) में मिल सकते हैं।

क्षेपक

अहिरावण-वध	≡)

नोट—बीस भाग रामायण और चार भाग उत्तर राम चरित्र तथा अहिरावण-वध, कुल २५ भाग, एक ही सुन्दर जिल्द में ।≈) अधिक देने पर अर्थात् ५।।-) में मिल सकते हैं।

पं० राधेश्यामजी कविरत्न
द्वारा लिखित नवीन कृति

कृष्णायन

जन्माष्टमी	।)
नन्द-महोत्सव	।)
कमलीवाला कन्हैया	।)
गिरिवरधारी	।)
रास-रहस्य	।)
कंस-वध	।)
नन्द-नन्दन-वसुदेव-नन्दन	।)

सम्पूर्ण भाग एक सुन्दर जिल्द में चार आने अधिक देने पर अर्थात दो रुपए में मिलेंगे।

श्रीमद्भगवद्गीता

(रामायण की तर्ज़ में)

अर्जुन-मोह	≡)
आत्मा की अमरता	≡)
कर्म-योग	≡)
विराट् रूप दर्शन	≡)
जीव-ब्रह्म-विवेक	≡)
अर्जुन का समाधान	≡)

जिल्ददार गुटका १) में मिलेगा।

दुर्गा—चरित्र

(रामायण की तर्ज़ में)

महिषासुर-वध	।)
शुम्भ का उत्पात	।)
चामुण्डा का पराक्रम	।)
रक्त-बीज की लड़ाई	।)
शुम्भ और निशुम्भ का वध	।)

जिल्ददार गुटका १) में मिलेगा।

महाभारत

(रामायण की तर्ज़ में)

भीष्म-प्रतिज्ञा	।)
भीष्म-पराक्रम	।)
पाण्डव-जन्म	।)
पाण्डवों का बाल्य-काल	।)
पाण्डवों की शस्त्र-परीक्षा	।)
लाक्षागृह	।)
बक-संहार	।)
द्रौपदी-विवाह	।)
सुभद्रा-हरण	।)
राजसूय-यज्ञ	।)

रामायण की तर्ज़ में—
अन्य कथायें

श्रीसत्यनारायण की कथा	i)
प्रह्लाद-चरित्र	I)
ध्रुव-चरित्र	I)
सुदामा-चरित्र	I)
मोरध्वज-चरित्र	I)
भर्तृहरि-चरित्र	I)
महाराणा प्रतापसिंह	I)
सत्यवादी हरिश्चन्द्र	I)
सावित्री-सत्यवान्	I)
भक्त-अम्बरीष	I)
अभिमन्यु की वीरता	I)
द्रौपदी-लीला	≡)
महाराजा दिलीप	≡)
महर्षि चरित्र (४ भाग)	१)

भजन गाने व ग़ज़लें

राधेश्याम विलास	III)
राधेश्याम-कीर्त्तन	II)
राधेश्याम भजनमाला	III)
प्राचीन भजनमाला	I)
मुसाफ़िर की पाकेट बुक	II)
प्रेम-रत्नावली	=)
निजानन्द प्रदीपिका	=)
गृहिणी गीताञ्जलि	०I)
आनन्द-लहरी	–)
मीरा-भजनमाला	=)
बोध-प्रकाशी	I)
पद्य-पुष्पाँजलि	–)
आरती संग्रह	–)
ग़ज़लों का गुलदस्ता	=)
ग़ज़ल-सागर	II)
पद-पुञ्ज	–)
मोहन भजनमाला	I)
मोहन गीतावली	≡)
मोहन संगीत शिक्षा	I)

भ्रमर-गीत-माला

मीठीगुञ्जार =) मधुरमुरली =)
रसीलीतान =) कुसुम-कुंज =
वसंतवाटिका =) पद्म-पराग =)

अन्य पुस्तकें

श्यामायन (२ भाग)	II=)
भक्त स्त्रियाँ	=II)
सतलड़ी	II)
अजायब घर	II)
प्रेत-लोक	१)
ज्योतिष-प्रकाश	I–)
वियोग-कथा	I)
हनुमान चालीसा	)II
अमरकोष	I)
पत्रों का प्याला	≡)
धनुर्विद्या	II)
नौलखाहार	१)
दृष्टान्त-महासागर	१)
मोहन माला	=)

कृष्ण-सुदामा

(लेखक—कथावाचस्पति पं० राधेश्याम कविरत्न)

यह 'श्रीकृष्ण-सुदामा' एक अंक में समाप्त होनेवाला नाटक है। पाठशालाओं, स्कूलों और सेवा-समितियों आदि के उत्सवों पर अक्सर ऐसे नाटक तलाश किये जाते हैं, जो विना साज सामान के, थोड़ी ही देर में, वहीं के वहीं खेले जा सकें। यह नाटक इसी ढंग का है। पंडितजी ने स्वयं लिखा है। मूल्य ।) आने।

—o—

शान्ति के दूत भगवान् श्रीकृष्ण

(लेखक—कथावाचस्पति प० राधेश्याम कविरत्न)

'शान्ति के दूत भगवान् श्रीकृष्ण' एक छोटा किन्तु सुन्दर एकाङ्की नाटक है। कौरवों और पाण्डवों का आपुसी वैर मिटाकर दोनों पक्षों में मेल करा देने की चेष्टा करने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं दुर्योधन की तरफ गये थे। इस कार्य का भार स्वीकार करके वे 'शान्ति के दूत' कहलाये। इस एकाङ्की नाटक में भगवान् श्रीकृष्ण के इसी कार्य का रोचक और हृदयग्राही वर्णन है। भगवान् के व्यक्तित्व में कितना चमत्कार था वह उनके उद्योग और उनके तर्क-गर्भित सम्वाद से इस नाटक में खूब प्रदर्शित हुआ है। दुर्योधन की मेवा त्याग कर विदुर के घर शाक-पात खाने का प्रेमपूरित प्रसंग भी इस नाटक में सम्मिलित है। पढ़कर आनन्द लेने के साथ ही साथ सभा-समाजों और विद्यालयों के उत्सवों पर खेलने के लिये भी यह नाटक बहुत उपयुक्त है। मूल्य केवल ।) आने।

छप गया ! क्या ? नया नाटक

(लेखक—कविरत्न पं० राधेश्याम कथावाचक)

लीलाधाम भगवान् कृष्णचन्द्र के पुनीत चरित्र को तो न्यू अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी के स्टेज पर श्रीकृष्णावतार, द्रौपदी-स्वयम्वर तथा रुक्मिणी-मंगल आदि नाटकों द्वारा पण्डितजी जनता के सम्मुख उपस्थित कर ही चुके हैं। अब आपने देवाधिदेव भगवान् शंकर और उनकी अर्द्धाङ्गिनी महासती सती के परम पावन चरित्र को अपनी चमत्कारिणी तथा ओजस्विनी लेखनी द्वारा नाटक के रूप में उपस्थित करके एक भारी कमी को पूर्ण कर दिया है।

इस नाटक में आपको सती-धर्म की पराकाष्ठा, भूतभावन भगवान् शंकर की निस्पृहता, कर्तृ और हर्तृ शक्तियों का संघर्ष, देखने को मिलेगा; तथा ब्रह्मा, राम, शंकर, सीता, सती, दक्ष, इन्द्रादि देवताओं के शुभ दर्शन प्राप्त होंगे। यह नाटक पण्डित जी की सर्वोत्कृष्ट कृति है। हमारा दावा है कि आप इसे देखकर आनन्द-विभोर होजायेंगे। दाम १), डाक महसूल ।-)

मिलने का पता—

पता—श्रीराधेश्याम